समसामयिक हिंदी कहानी(२००१ से २०१० तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित): एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में)

Contemporary Hindi Short Stories (published in Journals from 2001 to 2010) : An Analytical Study with Special Reference to Globalisation

कालिकट विश्वविद्यालय की
'डॉक्टर ऑफ फिलासफ़ी' की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध
2015

Thesis
submitted to the University of Calicut
for the degree of
Doctor of Philosophy in Hindi
May 2015

निर्देशक
डॉ. आर. सेतुनाथ,
असोसियेट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग,
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुत कर्ता
सजिला. के
शोध छात्रा
कालिकट विश्वविद्यालय

Dr. R. SETHUNATH
Associate Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

Certified that this thesis entitled **"CONTEMPORARY HINDI SHORT STORIES (PUBLISHED IN JOURNALS FROM 2001 TO 2010) : AN ANALYTICAL STUDY WITH SPECIAL REFERENCE TO GLOBALISATION)"** embodies the results of a bonafide research work carried out by **Smt. SAJILA. K** under my supervision and guidance and that no part of the thesis has hitherto been submitted for any other degree in any University.

University of Calicut

Dr. R. SETHUNATH
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I, **SAJILA . K** to hereby declare that this thesis **" CONTEMPORARY HINDI SHORT STORIES (PUBLISHED IN JOURNALS FROM 2001 TO 2010) : AN ANALYTICAL STUDY WITH SPECIAL REFERENCE TO GLOBALISATION"** is record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basic for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar title or recognition. This research work was supervised by **Dr. R. SETHUNATH**, Associate Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

University of Calicut **SAJILA. K**

विषय - सूची

प्राक्कथन I-IV

अध्याय एक 1-19

हिंदी साहित्य के विकास में पत्रिकाओं की देन : एक सर्वेक्षण

1.1 पत्रिकाओं का उद्‌भव एवं विकास
1.2 पत्रिका : परिभाषा
1.3 पत्रिकाओं का वर्गीकरण एवं प्रकार
1.3.1 प्रकाशन अवधि के आधार पर पत्रिकाएँ
1.3.2 विषय के आधार पर हिंदी पत्रिकाएँ
1.3.2.1 साहित्यिक पत्रिका के प्रकार
1.3.3 ब्रेल पत्रिका
1.3.4 ई-पत्रिका
1.4 पत्रिका साहित्य : परंपरा और वर्तमान
1.4.1 पत्रिकाएँ - स्वतंत्रता पूर्व काल
1.4.1.1 भारतेन्दु युग (1867-1900)
1.4.1.2 द्विवेदी युग (1900 - 1920)
1.4.1.3 छायावाद युग (1920-1947)
1.4.2 स्वातंत्र्योत्तर पत्रिकाएँ
1.4.2.1 साठोत्तरी पत्रिकाएँ (बीसवीं सदी के उत्तरार्ध)
1.4.2.2 इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की पत्रिकाएँ
1.5 पत्रिका साहित्य की प्रासंगिकता
1.5.1 पुस्तक समीक्षा
1.5.2 पुस्तक प्रकाशन
1.5.3 विशेषांक
1.6 पत्रिका साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
1.6.1 विविधात्मक और व्यापक
1.6.2 नए साहित्यकारों का परिचय
1.6.3 परिवेशों से परिचित
1.6.4 मानवीय मूल्यों एवं गुणों के विकास में सहायक
1.6.5 समसामयिक साहित्यिक गतिविधियों का चित्रण
1.6.6 सस्ता एवं सुविधाजनक
1.6.7 समसामयिक समस्याओं का चित्रण

1.6.8 साहित्य की विश्व स्तरीय प्रतिष्ठा
1.6.9 अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियों का रूपायन एवं विकास
1.6.9.1 कविता आंदोलन (नयी काव्यप्रवृत्तियों की झलक)
1.6.9.2 कहानी आन्दोलन
1.6.9.3 भाषा का विकास

अध्याय दो **20-50**

भूमंडलीकरण और भारतीय समाज

2.1 उद्‌भव और विकास
2.2 व्युत्पत्ति
2.3 अर्थ एवं परिभाषा
2.4 भूमण्डलीकरण : विभिन्न पहलुएँ
2.4.1 अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण
2.4.2 राजनीति का भूमंडलीकरण
2.4.3 सांस्कृतिक भूमंडलीकरण
2.4.4 पर्यावरण का भूमंडलीकरण
2.4.5 विचारधारा का भूमंडलीकरण
2.5 भूमंडलीकरण - आधार बिन्दु
2.5.1 उदारीकरण और निजीकरण
2.5.2 बाज़ारवाद
2.5.3 उपभोक्तावाद
2.6 भूमंडलीकरण का समाज पर प्रभाव
2.6.1 भूमंडलीकरण के दुष्प्रभावों पर विद्वानों की राय
2.7 भूमंडलीकरण और भारतीय समाज
2.7.1 भारत में भूमंडलीकरण का आरंभ
2.7.2 भूमंडलीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव
2.7.2.1 भारतीय बाज़ार
2.7.2.2 भारतीय मीडिया
2.7.2.3 भारतीय भाषाएँ
2.7.2.4 भारतीय संस्कृति
2.7.2.5 भारतीय मानसिकता
2.7.3 भूमंडलीकरण में स्त्री, पुरुष

अध्याय तीन 51-66

पत्रिका साहित्य (2001 से 2010 तक) कहानी और कहानीकार

3.1 आधुनिक हिंदी कहानी, अब तक – एक संक्षिप्त परिचय
3.2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी
3.3 समसामयिक हिंदी कहानी और भूमण्डलीकरण
3.4 समसामयिक हिंदी कहानी एवं पत्रिका विवरण
3.5 चुनी हई पत्रिकाओं का संक्षिप्त विवरण
3.5.1 हंस
3.5.2 कथादेश
3.5.3 नया ज्ञानोदय
3.5.4 भाषा
3.5.5 वागर्थ
3.5.6 साहित्य अमृत
3.5.7 समकालीन भारतीय साहित्य
3.5.8 साक्षात्कार
3.5.9 अक्षरपर्व
3.5.10 अन्य पत्रिकाएँ
3.6 समसामयिक हिंदी कहानी एवं कहानीकार
3.6.1 ग्रामीण जीवन का बदलता स्वरूप
3.6.2 बेरोज़गारी, आर्थिक विषमताएँ
3.6.3 अकेलापन और वार्द्धक्य
3.6.4 महानगरीय जीवन, पारिवारिक अलगाव
3.6.5 नारी विमर्श और महिला लेखन
3.6.6 दलित विमर्श और पारिस्थितिक सजगता

अध्याय चार 67-175

2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी कहानी : विश्लेषणात्मक अध्ययन, वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में

4.1 उपभोगवादी संस्कृति
4.1.1 मॉल संस्कृति
4.1.2 अवैध स्त्री-पुरुष संबंध
4.2 बाज़ारीकरण के युग में स्त्री

4.2.1 स्त्री देह का बाज़ारीकरण
4.2.2 शोषण का नया रूप
4.2.2.1 मॉडलिंग
4.2.2.2 ऑनलाईन रोमांस
4.2.2.3 रियालिटि शो
4.2.3 मुक्त जीवन दृष्टि
4.2.4 उन्मुक्त जीवन शैली
4.3 आर्थिक असंतुलन और आम जनता की जिंदगी
4.3.1 मल्टीनैशनल कंपनियों का दखलअंदाज
4.3.2 कृषि अर्थ-व्यवस्था का पतन
4.3.3 कृषि भूमि का अधिग्रहण
4.3.4 पारिस्थितिक असंतुलन
4.3.5 कुटीर उद्योगों का पतन
4.3.6 देशी उद्योगों का ह्रास
4.4 पारिवारिक विघटन
4.4.1 शिथिल होते पारिवारिक संबंध
4.4.2 दांपत्य जीवन में दरार
4.4.3 पारिवारिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास
4.5 लिविंग टुगेदर या लिव इन रिलेशनशिप
4.6 घर से प्रस्थान और वृद्धसदन में सहारा
4.7 विस्थापन की झंझट
4.7.1 विकास के नाम पर विस्थापन
4.7.2 युद्ध, सांप्रदायिक दंगों आदि के कारण
4.7.3 प्राकृतिक विपदा के कारण
4.7.4 बेहतरीन जिंदगी या नौकरी की तलाश में
4.7.5 वृद्धावस्था
4.7.6 सांस्कृतिक विस्थापन
4.8 हाशिए की आवाज़
4.9 पारिस्थितिक संकट
4.10 मनुष्य जीवन पर प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का वर्चस्व
4.11 भाषाई संकट
4.11.1 शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाओं में भूमंडीकृत भाषा का वर्चस्व
4.11.2 भाषा का बदलता तेवर

4.11.3 सूचना प्रौद्योगिकी में भाषाई संकट
4.12 शिल्प पक्ष
4.12.1 कथावस्तु की शिथिलता
4.12.2 पात्रों का नामकरण
4.12.3 संवाद
4.12.4 भाषा शैली
4.12.4.1 मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग
4.12.5 रचना शैली

उपसंहार **176-179**
संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्राक्कथन

वर्तमान युग विविधोन्मुखी समस्याओं की भीषण अवस्थाओं से गुज़र रहा है। एक ओर साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा संचालित युद्ध, धार्मिक कट्टरता एवं गलत विचारधाराओं से पली आतंकवादी प्रवृत्तियाँ, सामाजिक, राजनैतिक असुरक्षा हैं तो दूसरी ओर इनसे उत्पन्न विस्थापन, भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी से उत्पन्न भूख, चोरी-डकैती, विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण, इससे पीडित किसानों की आत्महत्या, यौन उत्पीडन का भयानक चेहरा, क्रश एवं वृद्धसदनों की वृद्धि, बाज़ार से निर्मित उपभोगवादी संस्कृति का अतिक्रमण, पारिवारिक तथा स्त्री-पुरुष संबन्धों में आये शिथिलीकरण, सरकारी व्यवस्थाओं का निजीकरण द्वारा कार्परेटों का उन्नमन, ब्रेन-ड्रेइन, ज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी का अतिप्रसरण आदि बीसवीं शताब्दी के नवीन आर्थिक नीतियों का दुष्परिणाम है। नव-उपनिवेशवाद के आर्थिक नीतियों से उपजी उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण से विकसित साम्राज्यवादी सोच की भयानक स्थिति विशेष ने भारत के आर्थिक ढाँचे को बदल दिया। किसी भी देश के आर्थिक नीति पर जब कोई परिवर्तन आ जाये तो उसका प्रतिफलन पूरे समाज पर भी द्रष्टव्य होता है। इन नीतियों के बल पर पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियाँ, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा विकास के नाम पर देश के प्राकृतिक संसाधनों, अर्थव्यवस्था, उद्योग, मानव जीवन तथा संस्कृति आदि का शोषण ज़ोरो से कर रही है। नतीजा तो यहीं है कि साधारण जन समूह को खुशियों की अपेक्षा अधिक दुख ही प्रदान कर रही हैं। इस वजह से व्यक्ति मानसिक संघर्ष, कुण्ठा, अकेलापन तथा निराशाजन्य संत्रास से भीतर ही भीतर दम घुटता जा रहा है।

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों से जनित सामाजिक परिवेश का सही आकलन साहित्यिक रचनाओं में होना स्वाभाविक है। इन साहित्यिक विधाओं में जीवन के निकटतम रहने के कारण कहानी की लोकप्रियता

उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इन कहानियों के द्वारा साहित्यकारों ने आज के भूमण्डलीकृत समाज का यथार्थ एवं विकराल चित्र प्रस्तुत करके पाठकों को उसके दुष्परिणामों से अवगत कराया है। अतः इक्कीसवीं सदी की साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण समीचीन है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मैंने वैश्वीकरण से प्रभावित वर्तमान जीवन की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का विश्लेषण 2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी कहानियों के अध्ययन के ज़रिए किया है।इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक है "समसामयिक हिंदी कहानी: (2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित) एक विश्लेषणात्मक अध्ययन: वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में।" वैश्वीकरण के प्रभाव से भारत की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन में जो अभूतपूर्व परिवर्तन आया है उसका आकलन प्रस्तुत अध्ययन में किया है।प्रस्तुत परिवर्तित समाज का चित्रण करने में समसामयिक कहानी कहाँ तक सफल हुई है इसका अध्ययन भी किया है। इसमें उपसंहार सहित कुल पाँच अध्याय हैं।

"हिंदी साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की देन : एक सर्वेक्षण" शीर्षक प्रथम अध्याय में मैंने हिंदी साहित्य के विकास में पत्रिकाओं की जो देन है उसका संक्षिप्त परिचय देते हुए पत्रिकाओं का उद्‌भव एवं विकास, पत्रिका की परिभाषा, पत्रिकाओं का वर्गीकरण एवं प्रकार, भारतेन्दु युग से लेकर इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक प्रकाशित हिंदी पत्रिकाओं का विवरण, पत्रिका साहित्य की प्रासंगिकता, पत्रिका साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ आदि पर अध्ययन किया है।

"भूमण्डलीकरण और भारतीय समाज" शीर्षक दूसरे अध्याय में भूमण्डलीकरण का उद्‌भव और विकास, अर्थ एवं परिभाषा, भूमण्डलीकरण के विभिन्न पहलुएँ, भूमण्डलीकरण का समाज पर प्रभाव, भारत में भूमण्डलीकरण का आरंभ एवं भारतीय समाज पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव आदि पर चर्चा की गयी है।

तीसरा अध्याय है " पत्रिका साहित्य (2001 से 2010 तक) कहानी और कहानीकार"। प्रस्तुत अध्याय में समसामयिक हिंदी कहानी पर विचार करके पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों एवं कहानीकारों का तथा शोध कार्य केलिए चुनी हुई पत्रिकाओं का भी संक्षिप्त परिचय दिया है।

अंतिम तथा चौथा अध्याय है " 2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी कहानी : विश्लेषणात्मक अध्ययन, वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में"। प्रस्तुत अध्याय में पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में किया है। अध्ययन केलिए दूसरे अध्याय में प्रतिपादित वैश्वीकरण के सैद्धान्तिक पहलुओं एवं बहुमुखी प्रवृत्तियों को आधार बनाकर तीसरे अध्याय में प्रतिपादित कहानियों का कथ्यपरक अध्ययन किया है। अंत में उपसंहार है।इसमें अध्ययन का सारांश दिया गया है।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के असोसिएट प्रोफेसर डॉ. आर. सेतुनाथ जी के मार्गदर्शन में मैंने यह शोध प्रबन्ध तैयार किया है। मुझे वे बराबर अपने विद्वतापूर्ण सुझाव एवं परामर्श देते रहे, उनके बहुमूल्य उपदेश एवं प्रेरणा से ही यह शोध कार्य संपन्न हुआ है। विषय चयन से लेकर शोध प्रबन्ध की पूर्णता तक डॉ. सेतुनाथ जी ने जिस सरल, सहृदय और आत्मीयता का परिचय दिया है, उसकेलिए मैं सदा ऋणी रहूँगी।

इस अवसर पर मैं प्रो. एम.एस. विश्वम्भरन जी (भूतपूर्व आचार्य, हिंदी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय) को तहे दिल से आभार व्यक्त करती हूँ। आपके द्वारा दिये गए पत्रिकाएँ इस शोध कार्य में बहुत उपयोगी रही। इस अध्ययन केलिए विभाग के अध्यापकों से मुझे जो प्रेरणा एवं सहायता मिली है उसके लिए मैंउनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। साथ ही विभाग के सभी मित्रों को भी मैं तहे दिल से शुक्रिया अदा करती हूँ। अध्ययन के दौरान सामग्री इकट्ठा करने केलिए कोच्चिन विश्वविद्यालय

के हिंदी विभाग में जाने का अवसर मिला। विश्वविद्यालय के सभी अध्यापकों एवं शोध छात्राओं को मैं इस अवसर पर स्मरण करती हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध को विद्वानों के समक्ष सविनय प्रस्तुत करती हूँ ।

विनीत,

हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

सजिला.के
शोध छात्रा

अध्याय 1

हिंदी साहित्य के विकास में पत्रिकाओं की देनः एक सर्वेक्षण

भूमिका

आधुनिकता की सबसे बडी उपलब्धियों में एक थी प्रिंटिग प्रेस, जिसने ज्ञान को मुक्त किया, सबकेलिए सुलभ बनाया। जोहानस गुटनबर्ग द्वारा 1450 में मुद्रण यंत्र के आविष्कार से जनसंचार माध्यम के विकास के इतिहास में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। सूचना, समाचार, साहित्य एवं सैद्धान्तिक विचारों का मुद्रित रूप लोगों तक पहूँचने लगा। मुद्रण यंत्र की स्थापना भारत में पुर्तुगलियों ने 1550 में धार्मिक पुस्तकें छापने केलिए किया था। 1674 में बंबई में ईस्ट इंडिया कंपनी ने छापाखाना शुरू किया था। धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं में पत्र निकालने लगे। प्रेस के विकास ने विचारों के विनिमय को सहज बनाया। आगे चलकर पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू होने लगा और धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई।

1.1 पत्रिकाओं का उद्‌भव एवं विकास

पत्रिका, समाचार पत्र का विस्तृत रूप है। इसकी सामग्री व पृष्ठ समाचार पत्रों से अधिक होते हैं। लोगों में वाचन अभिरुचि को बढाने केलिए साहित्यिक विधाओं का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में होने लगा। जिससे लोगों में साहित्यिक अभिरुचि बढने लगी। साहित्यकार अपनी रचनाओं के प्रकाशन केलिए पत्रिकाओं का सहारा लेने लगा। स्वतंत्र साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी होने लगा। भारतीय इतिहास में नवजागृति का युग उन्नीसवीं शती को माना जाता है। इसी युग के उत्तरार्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के *कविवचन सुधा* के द्वारा हिंदी पत्रिकाओं के नये युग का आरंभ हुआ। पत्रिकाओं का

आधुनिक युग में महत्वपूर्ण स्थान है। पत्रिकाएँ अपने समसामयिक जीवन का एक सही एवं तर्कपूर्ण रूप तो प्रस्तुत करती हैं साथ ही समाज के उत्थान केलिए समय समय पर एक जरूरी मानसिकता एवं संस्कार देने का प्रयास भी करती हैं।

1.2 पत्रिका - परिभाषा

भारत के विद्वानों एवं पत्रकारों ने पत्रिका की परिभाषा की हैइनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

- डॉ. आदित्य प्रचण्डिया के अनुसार "पत्र-पत्रिकाएँ दिनानुदिन की गतिशीलता की लेखा हैं।"[1]
- कांतिकुमार जैन ने कहा है कि "पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य और पाठक के बीच एक बहुत बडे सेतु का काम करती है।"[2]
- धर्मेंद्र गुप्त के अनुसार "पत्रिका एक मिशन है, एक लक्ष्य है, एक संकल्प जो अपने को समाज से जोडकर मानवीय मूल्यों की पहचान केलिए हजार कटों को झेलकर कलमजीवी व्यक्ति अपनी बात कहता है और दूसरों को प्रेरित करता है कि वह भी उनसे जुडकर साहस के साथ अपनी बात कहें।[3]

पत्रिकाएँ विभिन्न क्षेत्रों का उपलब्ध हैं - साहित्य, खेल, विज्ञान, कला-संस्कृति, वाणीज्य आदि। साहित्य पत्रिका के संबन्ध में चिंतकों ने इस प्रकार परिभाषित किया है।

- क ख ग त्रैमासिक के चौथे अंक में *बद्रीविशाल पित्ती* ने साहित्यिक पत्रिका के बारे में इस प्रकार लिखा है- "साहित्य के विभिन्न रूप कविता, कहानी, उपन्यास,

---

1) डॉ. पद्मा पाटिल, डॉ. महेश 'दिवाकर' :- हिंदी पत्रकारिताः स्वरूप, आयाम और सम्भावना, अखिल भारतीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद, उ.प्र, 2006, पृ 28
2) सुरेश गौतम :- पत्रकारितः कल, आज और कल , पृ 368
3) धर्मेंद्र गुप्त :- लघु पत्रिकाएँ और साहित्यिक पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन 2000, पृ-आवरण पृ

नाटक, निबन्ध, साहित्यालोचन और लेखन से संबन्धित समस्याओं और भाषा इत्यादि विषयों को लेकर चलनेवाली पत्रिका को साहित्यिक पत्रिका कहा जाता है।"[4]

- धर्मेन्द्र गुप्त -"साहित्यिक पत्रिका मानवीय मूल्यों को पूर्णतः समर्पित है। वह किसी निराश मन की व्यथा न होकर सक्रिय इच्छा शक्ति की क्रियात्मक अभिव्यक्ति मानी जा सकती है, जिसमें मानवीय हलचल सदा आन्दोलित होती रहती है।"[5]
- अज्ञेय द्वारा संपादित *प्रतीक* पत्रिका (प्रयोगवाद से नयी कविता में जो रचनात्मक रूपान्तरण हुआ उसमें प्रमुख पत्रिका)के प्रकाशन संदर्भ में अज्ञेय ने साहित्यिक पत्रिका के संबन्ध में ऐसा कहा है : "आधुनिक हिंदी के समूचे साहित्यिक कृतित्व का प्रतिनिधित्व करनेवाली पत्रिका साहित्य पत्रिका है।"[6]

इसप्रकार हम यह कह सकते हैं कि सभी साहित्यिक विधाओं को एक अंक में या पुस्तक में समेटते हुए प्रकाशन योग्य मुद्रित सामग्री को साहित्यिक पत्रिका कहती है।

1.3 पत्रिकाओं का वर्गीकरण एवं प्रकार

1.3.1 प्रकाशन अवधि के आधार पर पत्रिकाएँ : साप्ताहिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, अर्धकालिक, वार्षिक आदि रूप में बांटा जा सकता है। इसमें साप्ताहिक और मासिक अधिक लोकप्रिय हैं।

साप्ताहिक – कर्मवीर, सूत्रधार, सिनेचित्रा आदि।

---

4) धर्मेंद्र गुप्त :- लघु पत्रिकाएँ और साहित्यिक पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, 2000, पृ 12
5) धर्मेंद्र गुप्त :- लघु पत्रिकाएँ और साहित्यिक पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, 2000, पृ 15
6) राजेन्द्र मिश्र, देवी सिंह राठौर :- पत्रकारिता के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, 2003,

मासिक - हंस, साहित्य अमृत आदि।

द्वैमासिक - भाषा, समकालीन भारतीय साहित्य आदि।

त्रैमासिक – सिंधी साहित्य सुरभी, पंचशील।

वार्षिक - अनुशीलन, तुलसीदास, मंगलदीप आदि।

पाक्षिक - महेश्वरी।

1.3.2 विषय के आधार पर हिंदी पत्रिकाएँ : विषय की दृष्टि से पत्रिकाएँ कई प्रकार की है।

साहित्यिक पत्रिका - मधुमति, रंग प्रसंग आदि।

खेल पत्रिका – खेल-खिलाडी, खेल समाचार आदि।

महिलाओं की पत्रिका – गृहशोभा, महिलादर्पण आदि।

बाल पत्रिका – चंदामामा, बाल भारती आदि।

रोजगार पत्रिका - इम्प्लायमैंट न्यूज।

वैज्ञानिक पत्रिका – विज्ञान गरिमा सिन्धु, विज्ञान डाइजैस्ट आदि।

कृषि पत्रिका - शारद कृषि, उन्नत कृषि, खेती आदि।

आर्थिक पत्रिका – कामर्स, आर्थिकी, उघोग भारती आदि।

1.3.2.1 साहित्यिक पत्रिका के प्रकार

साहित्यिक पत्रिकाएँ आम तौर पर साहित्य पर केन्द्रित होती हैं, जैसे भाषा, वागर्थ आदि। लेकिन कुछ पत्रिकाएँ विधा विशेष पर आधारित होती हैं जैसे-

कहानी पर केंद्रित - हंस, कथादेश आदि।

नाटक पर केंद्रित - रंग प्रसंग, नटरंग आदि।

आलोचना पर केंद्रित - अनुशीलन, आलोचना आदि।

शोध पत्रिका - साहित्य प्रभा, पंचशील शोध समीक्षा, सम्मेलन पत्रिका, शोध आदि।

1.3.3 ब्रेल पत्रिका

दृष्टिहीन लोगों केलिए उपयुक्त पत्रिकाएँ ब्रेल पत्रिका होती हैं। ब्रेल पत्रिकाओं में सबसे प्रमुख पत्रिका 1975 में विश्वनारायण सिंह के संपादकत्व में निकली 'आलोक' है जिसका नाम बाद में *नयन रश्मि* हो गया। यह शुरू में त्रैमासिक थी, फिर 1978 से मासिक हो गयी। दृष्टिहीन बच्चों केलिए 1971 में देहरादून से 'शिशु आलोक' त्रैमासिक पत्रिका निकली थी।

1.3.4 ई-पत्रिका

सूचना प्रौद्योगिकी के क्रान्तिकारी विस्फोट ने संपूर्ण विश्व कोइंटरनेट के जाल में बुना दिया। आज इंटरनेट अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया है। देश विदेश के सभी साहित्यिक अभिव्यक्तियों का परिचय यथासंभव ई-पत्रिकाओं के द्वारा प्राप्त हो रहा है। हिंदी साहित्य जगत में विशेषकर पत्रिका साहित्य में ई-पत्रिका एक नूतन चलन की सृष्टि की है।ई-पत्रिका दो तरह के हैं। 1) इंटरनेट में प्राप्त ई-पत्रिका, 2) मुद्रित पत्रिकाओं की

ओनलाईन प्रति। साथ ही साथ ब्लोग के द्वारा भी साहित्यिक अभिव्यक्ति होती है। हिंदी में प्राप्त ई-पत्रिका एवं ब्लोग की संख्या विशाल है।

1.4 पत्रिका साहित्य : परंपरा और वर्तमान

हिंदी साहित्येतिहासकारों ने आधुनिक काल का प्रारंभ 1850 से माना है। उस समय भारत में अंग्रेज़ शासन के विरुद्ध क्रांति की ज्वाला धधक उठी। देश के चिन्तक, दार्शनिक, संत, राजनेता और साहित्यकार सब एक स्वर से अंग्रेजों के खिलाफ आग उगलने लगे। इस महाज्वाला में पत्र-पत्रिकाओं ने आग में घी डालने का कार्य किया। सही अर्थों में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत इसी समय हुई। इन पत्र-पत्रिकाओं के सहारे साहित्यकारों ने आम जनता से अपना सीधा संपर्क स्थापित किया। अपने लेख, कविता, नाटक, प्रहसन, कहानी इत्यादि को पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करके राष्ट्रीय नवजागरण के अभियान में आम आदमी का भी सहयोग प्राप्त किया।

1.4.1 पत्रिकाएँ - स्वतंत्रता पूर्व काल

1.4.1.1 भारतेन्दु युग :(1867-1900)

हिंदी साहित्य जगत् में पत्रिकाओं का प्रारंभ सन् 1868 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के *कविवचन सुधा* के प्रकाशन से ही हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में जितना महत्वपूर्ण स्थान है उतना ही महत्व पत्रिकाओं के इतिहास में भी प्राप्त है। *कविवचन सुधा* के माध्यम से भारतेन्दु ने उस समय तक रची पद्य शैली साहित्य में गद्य शैली का प्रयोग करने लगा। पत्रिका में पहले केवल कविताएँ ही प्रकाशित थी, लेकिन मासिक से पाक्षिक पत्रिका होने के बाद इसमें गद्य रूप भी छापने लगी। *कविवचन सुधा* के माध्यम से एक ओर जनता में जागरण करने और समाज में सुधार लाने का प्रयास किया तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार

करने का कदम उठाया। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका में अनेक प्रतिभाशाली युवा साहित्यकारों को अपनी लेखनी चलाने का अवसर दिया, इससे हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य का रूपायन होने लगा। वास्तव में भारतेन्दु जी ने कविवचन सुधा का प्रकाशन करके नये युग का सूत्रपात किया।

कविवचन सुधा के अतिरिक्त भारतेन्दु ने *हरिश्चन्द्र मेगजीन* जो बाद में *हरिश्चन्द्र चन्द्रिका* नाम से निकला, और *बालबोधिनी* नामक महिला पत्रिका भी प्रकाशित की। इन पत्रिकाओं से प्रेरणा पाकर हिंदी में अनेक राजनीतिक तथा साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। इस युग में लगभग तीन सौ पत्रिकाएँ निकली थी। इनमें *कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भारतबंधु, आनन्द कादंबिनी, नागरी नीरद, भारत मित्र, बिहार बन्धु, उचित वक्ता, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण* आदि प्रमुख हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास तथा समाज और राष्ट्र के निर्माण में इन पत्र-पत्रिकाओं नेप्रत्यक्ष रूप से अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जन जागरण और राजनैतिक चेतना की दृष्टि से इस काल की पत्रिकाओं का विशेष महत्व है। प्रेमघन, दामोदर शास्त्री, बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट, छोटूलाल मिश्र, दुर्गाप्रसाद, शंभूनाथ, प्रतापनारायण मिश्र आदि इस युग के प्रमुख संपादक थे।

1.4.1.2 द्विवेदी युग (1900 - 1920)

द्विवेदी युग की साहित्यिक पत्रिकाओं ने भाषा परिष्कार एवं गद्य की विभिन्न शैलियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस युग में हिंदी का आधुनिक रूप तथा खडीबोली निखर कर सामने आयी और अनेक साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा होने लगा। सरस्वती पत्रिका (1900) के आगमन से हिंदी साहित्य में नया मोड आया। नवजागरण के पुरोधा और पुनरुत्थानवादी महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 में सरस्वती पत्रिका का संपादन करके हिंदी साहित्य और साहित्यकारों को नई दिशा, नया मार्ग और नई शिक्षा प्रदान की। पत्रिका द्वारा द्विवेदी जी ने राष्ट्रीय नवजागरण

के साथ उच्चकोटि के साहित्यिक लेखन को भी महत्व दिया। व्याकरणिक संस्कार प्रदान करके खडीबोली हिंदी का परिष्कार एवं परिमार्जन किया। उनके साहित्यिक लेखन से प्रेरणा पाकर उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाएँ भी उस समय लिखी जैसे गुप्तजी अपनी *साकेत* की रचना द्विवेदीजी के लेख 'ऊर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता' से प्रभावित होकर की थी। प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वृन्दावनलाल वर्मा, विश्वंभरनाथ शर्मा, बंगमहिला की कहानियाँ सरस्वती में आयी थी। सरस्वती के साथ-साथ *इंदु, मर्यादा, नागरी प्रचारिणी सभा, प्रतिभा, साहित्यालोचक, श्री शारदा, प्रताप, सम्मेलन पत्रिका, हितवार्ता, अभ्युदय, नवनीत, तरंगिणी* आदि उस समय के प्रमुख पत्रिकाएँ थीं।

1.4.1.3 छायावाद युग (1920-1947)

उच्चकोटि की साहित्यिक पत्रिकाएँ ही उच्चकोटि के साहित्य सृजन को प्रोत्साहन देती हैं। इन्हीं कारणों से छायावाद युग में श्रेष्ठतम कोटि की अनेकानेक साप्ताहिक तथा मसिक पत्रिकाएँ उदित हुई तथा प्रसाद की *लहर, जागरण, आँसु की कण, यौवन प्रलय की छाया*, निराला की *सरोजस्मृति, जुही की कली, अधिवास, बादलराग, तुलसीदास, जागो फिर एक बार* आदि ख्याति प्राप्त कविताएँ प्रकाशित हुई। महादेवी वर्मा की बहुत ही कविताएँ'चाँद' और 'सुधा' पत्रिकाओं में प्रकाशित थी। साहित्य इस युग में स्वतंत्र सत्ता के रूप में खडा रहने लगा। छायावादी युग अपने समय की समस्याओं को अधिक बल न देकर मानव और उसकी कला के शाश्वत मूल्यों को परखने पर ध्यान दिया। *मतवाला, माधुरी, चाँद, सुधा, हंस, रुपाभ, कादंबरी, विश्वभारती, गंगा, जागरण, इंदू, विशाल भारत* जैसी पत्रिकाएँ इसी युग की बहुमूल्य निधियाँ थी।

स्वतंत्रतापूर्व की पत्र-पत्रिकाओं ने सामाजिक-राष्ट्रीय जागरण फैलाने और अंग्रेज़ी के विरुद्ध माहौल बनाने में सक्रिया भूमिका निभाई। उस समय के लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख और विचार सामाजिक चेतना को झंकृत किया करते थे।

सभी साहित्यकारों और लेखकों ने अपनी रचना के द्वारा आम जनता को जागृत करने और अंग्रेज़ी के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा दी। इसके कारण कई पत्रिकाएँ जप्त कर लिया और कई साहित्यकारों को जेल जाना पड़ा। वास्तव में सन् 1947 तक जितनी पत्र-पत्रिकाएँ निकली, उन सबका मूल स्वर देशभक्ति था। इस सन्दर्भ में हरप्रकाश गौड का कथन उल्लेखनीय है –"*भारतीय राष्ट्रीय जागरण में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय जागरण के स्पन्दन को न केवल वाणी दी, अपितु उसे दिशा और गति भी प्रदान की*।" देश में नयी राजनीतिक जागृति केलिए जितना काम समाज-सुधारकों, धर्म-प्रचारकों और राजनीतिक दलों ने किया है उतना ही काम पत्र-पत्रिकाओं ने किया है। वास्तव में स्वतंत्रता आन्दोलन को गति प्रदान करने में पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

1.4.2 स्वातंत्र्योत्तर पत्रिकाएँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पत्र-पत्रिकाओं का अभूतपूर्व विकास एवं प्रगति हुई। बहुत अधिक साहित्यिक पत्रिकाएँ पनपने लगी और उनके हावभाव में बदलाव आने लगा।

1.4.2.1 साठोत्तरीपत्रिकाएँ (बीसवीं सदी के उत्तरार्ध)

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी के साहित्यिक आन्दोलनों, वादों की स्थापना, प्रचार-प्रसार एवं उनके प्रवक्ता के रूप में अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की सक्रिय भूमिका रही है। ***साहित्य सौरभ, समकालीन भारतीय साहित्य (1986), संग्रथन (1988), अंकन (1967), साहित्य अमृत, समीक्षा, साहित्य, आलोचना, गल्प भारती, कथन, सनीचर, ज्ञानोदय, नवभारत, अक्षर, पूर्वग्रह, साक्षात्कार, सारिका(1960), रस नटराज, मंगलदीप, चहक, वातायन, साहित्य सरित, साहित्यानुशीलन, मधुमति (1960), रंगप्रसंग (1997), भाषा (1960), कथादेश (1981), अक्षरपर्व (1997), दिनमान, दक्षिण भारत, कादम्बिनी, मनोहर कहानियाँ, छायानट, सापेक्ष,***

वैचारिकी, पत्रिका परिषद्, अभिनव भारती, अंतराल, निकष, कथालोक, प्रकर आदि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रकाशित पत्रिकाएँ हैं। इनमें अधिकांश पत्रिकाएँ आज भी प्रकाशित होती रहती हैं। ये पत्रिकाएँअनेक विषयों से संबन्धित विशेषांक भी प्रकाशित करती हैं ताकि पाठक गण को एक ही विषय पर सविस्तार ज्ञान मिलती है।

1.4.2.2 इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की पत्रिकाएँ

आज सूचना प्रौद्योगि की एवं तकनीकी के क्षेत्र में मानव प्रगति की ओर बढ रहा है। पत्रिकाओं का क्षेत्र भी इससे मुँहमोड नहीं किया है। आज वेब-पत्रिका माने ई-पत्रिकाएँ भी उपलब्ध हैं। आज के लगभग सभी मुद्रित पत्रिकाओं की ई-पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। ***वाक्, श्री मिलिन्द, पंचशील शोध समीक्षा, जनविकल्प, अक्षरपर्व, साहित्य प्रभा*** आदि इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में प्रकाशित पत्रिकाएँ हैं।

1.5 पत्रिका साहित्य की प्रासंगिकता

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास का निर्माण सच्चे अर्थ में बार-बार निकलने, बन्द होने और फिर नये नाम से निकलनेवाली पत्रिकाओं ने ही किया है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में पत्रिका साहित्य की प्रासंगिकता यहाँ समीचीन लगता है।

1.5.1 पुस्तक समीक्षा

पत्रिकाएँरचना और आलोचना दोनों को समान मानकर लेखन को सार्थकता एवं सक्रियता प्रदान करती है। पुस्तक समीक्षा पत्रिका का एक प्रमुख अंग है। पुस्तक समालोचना लेखक-पाठक के बीच गहरा संवाद पैदा करती है। पुस्तक समीक्षा साहित्यकारों को साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठा देती है। पुस्तक का मूल्यांकन समकालीन लेखन को जानने-पहचानने का एक तरीका होता है। पुस्तक पर उठा विवाद चर्चा के लंबे दौर को जन्म देता है। पत्रिका का तात्पर्य सार्थक और निरर्थक अथवा असली और

नकली लेखन के बीच पहचान कराना है। साहित्यिक पत्रिकाएँ अपने समय के विस्मृत सांस्कृतिक परिदृश्य के बीच उन तत्वों की खोज करती है जो बाह्य या भौतिक प्रभावों से बचकर लेखन को अपनी ज़मीन से जोडने में सहायक हो। हरप्रकार की जडता को तोड़ते हुए साहित्य को गतिशील बनाये रखने में पत्रिकाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह साहित्य को खुला माहौल प्रदान करता है। प्रेमचन्द की सोच का विस्तार ही हम आज की अधिकांश पत्रिकाओं में देखते हैं कि *व्यक्ति और समाज को एक नई चेतना से जोडने में साहित्य का उपयोग करना*। अच्छी और बुरी रचनाओं की जानकारी देनेवाली समीक्षाओं को भी पत्र-पत्रिकाओं में स्थान मिल रहा है।

1.5.2 पुस्तक प्रकाशन

अन्य पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा साहित्यिक पत्रिकाओं में पुस्तक प्रकाशन लेखन की प्रगति का दर्पण है।साहित्य के पास पुस्तक के रूप में आकार ग्रहण करके पाठक के पास पहूँचने की शक्ति न होती तो वह अनाथ हो गया होता। आज के युग में इसी प्रक्रिया से साहित्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रख सका है। लेकिन पुस्तक प्रकाशन कोई मामूली कार्य नहीं है और साहित्य रचना को पुस्तक रूप में आकर भी विस्तृत चर्चा केलिए किन्हीं माध्यमों की आवश्यकता पडती है। यहीं पर पत्रिकाओं की भूमिका सामने आ जाती है। पत्रिकाओं की सबसे बड़ी उपलब्धी उस नई पीढी को सामने लाने में है जो आगामी दिनों नए जनवादी पथ पर एक निर्णायक भूमिका ग्रहण करनेवाली थी।

साहित्यिक पत्रिका समसामयिक रचनाशीलता को अधिक गतिशील बनाने में सहायक होती है सिर्फ लेखन केलिए लेखन साहित्यिक पत्रिका को महिमा नहीं देती बल्कि साहित्यिक पत्रिका के पृष्ठों पर आयी रचना में निहित प्रश्न अगर पाठकों को कुछ सोचने को विवश करता है या उनके मन-मस्तिष्क पर असर करता है तो साहित्यिक पत्रिकाएँ अपने उद्देश्य में सफल बन जायेगी। सार्थक लेखन को प्रकाशित करना

साहित्यिक पत्रिका का पहला गुण है। पत्रिकाएँ केवल मनोरंजन केलिए नहीं, साथ ही साथ छात्रों, शोधार्थियों, अध्यापकों केलिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। सामूहिक जानकारी एवं दृष्टिकोण का निर्माण करती है। आमआदमी की भावनाओं को अभिव्यक्ति देती है।

1.5.3 विशेषांक

पत्रिकाएँ किसी बडे साहित्यकार पर या किसी एक साहित्यिक विधा को लेकर या समसामयिक साहित्यिक विषय को लेकर विशेषांक प्रकाशित करती हैं। इससे पाठकों को एक विषय पर आधरित विभिन्न आलोचना एवं समीक्षा एक साथ मिलती है। यह छात्रों, शोधार्थियों और अध्यापकों केलिए सार्थक उपयोगी होती है।

1.6 पत्रिका साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिंदी के समसामयिक दौर को पत्रिकाओं का दौर कहा जा सकता है। वास्तव में आधुनिक हिंदी साहित्य का निर्माण बार-बार निकलने, बन्द होने और फिर निकलनेवाली साहित्यिक पत्रिकाओं ने ही किया है।

1.6.1 विविधात्मक और व्यापक

पत्रिकाओं का क्षेत्र विविधात्मक एवं व्यापक है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो पत्रिकाओं से अछूता हो। आज की पत्रिकाओं में सिर्फ साहित्यिक विषय ही नहीं, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक तथा अन्य विषयों पर भी चर्चा होती है। जो साहित्यिक पत्रिका है इसमें साहित्य के विविध विधाओं को एक साथ छाप जाती है। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रगति के साथ साथ आज पत्र-पत्रिकाएँ इतना व्यापक हो गया है कि विदेशों में भी इसे बडा प्रचार एवं प्रतिष्ठा मिल जाती है।

1.6.2 नए साहित्यकारों का परिचय

पत्र-पत्रिकाएँ अनेक साहित्यकारों को जनम देती है। साहित्यिक प्रतिभाओं की तलाश का काम जिस मुस्तैदी और सफलता से पत्रिकाएँ कर सकती है वह अन्य माध्यमों से कठिन है। सरस्वती पत्रिका के द्वारा हिंदीतर साहित्य के प्रमुख स्तंभ-निराला, गुप्त, पंत और महादेवी ने साहित्य में अपना स्थान बना लिया। आज की पत्रिकाओं में प्रतिष्ठित लेखकों के साथ नवलेखकों को भी स्थान देते है जिससे वे अपनी साहित्य यात्रा शुरू करते हैं और साहित्य जगत में अपना एक स्थान रखते हैं। प्रकाशन केन्द्रों से दूर, प्रचार तंत्र से अनभिज्ञ, संवेदनशील साहित्यकार केलिए पत्र-पत्रिकाएँ बडा उपयोगी, सार्थक एवं मूल्यवान मंच है।

1.6.3 परिवेशों से परिचित

पत्रिकाओं में आयी लेखन, कहानी, कविता आदि अपने चारों तरफ फैली ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। स्वतंत्रता पूर्व की पत्रिकाएँ यदि आम लोगों को राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देती है तो आज की पत्रिकाएँ मानव की स्वार्थ अमानवीय प्रवृत्तियों का खुला चित्र प्रस्तुत करती है। तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है।

1.6.4 मानवीय मूल्यों एवं गुणों के विकास में सहायक

पत्रिकाएँ मानवीय मूल्यों को पूर्णतः समर्पित है, विशेषकर साहित्यिक पत्रिकाएँ। साहित्य के द्वारा अमुक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह संस्कृति, समाज और मानवता के बारे में अपना मत व्यक्त करने को चाहते है तो वह साहित्यिक पत्रिका की सहारा लेती है। पत्रिकाएँ सिर्फ मनोरंजन का साधन मात्र न होकर बदलते मूल्यों की व्याख्या और आज के मानव की वर्तमान जिन्दगी और भविष्य पर चिन्ता करने को प्रेरित करती है।

परंपरा से मिल रहे सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानवीय गुण जो आज जनता से नष्ट या कम हो रहा है इसका खुला प्रस्तुतीकरण पत्रिकाओं द्वारा होती है। समय के साथ बदलते प्रतिमानों और मूल्यों का अवलोकन करके प्रत्येक पत्र-पत्रिका अपनी विषय वस्तु को लोगों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

1.6.5 समसामयिक साहित्यिक गतिविधियों का चित्रण

पत्रिकाओं का एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है समसामायिक साहित्यिक गतिविधियों का खुला चित्रण। पत्रिका में समकालीन लेखन प्रमुखता पाता है वरन् समकालीन साहित्य से जुडे प्रश्नों पर बहसों को भी स्थान दिया जाता है, जिससे लेखन को तीक्ष्णता प्राप्त होती है। हिंदी में यदि पत्र-पत्रिकाएँ न होती तो अधिकांश रचनाएँ कालकवलित हुई होगी या वक्त पर नहीं छप जाती। इतना ही नहीं साहित्य जगत में जो जो कार्यक्रम और परिवर्तन आते हैं इसकी जानकारी भी पत्रिकाओं के सहारा मिल पाती है।

1.6.6 सस्ता एवं सुविधाजनक

हिंदी साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाएँ जो कार्य किया है वह अन्य कोई संचार माध्यम ने नहीं किया है। उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों या ग्रन्थों को पढने में जो दिक्कत पाठकों को होते है उसे मिटाने का सफल प्रयास पत्रिकाओं ने किया है। साथ ही साथ महत्वपूर्ण रचनाओं के बारे में लोगों को अवगत कराने का भी सफल प्रयास करती हैं। महत्वपूर्ण रचनाओं को पढने की इच्छा मन में होते हुए भी आम आदमी को इसे मंगाने में दिक्कत होते है जैसे बडी कीमत और पुस्तक पाने में कठिनाई। वहाँ पत्रिकाएँ एक वरदान के रूप में सामने आती हैं। पत्रिकाएँ धारावाहिक रूप में ख्याति प्राप्त रचनाओं को प्रकाशित करती हैं, साथ ही साथ इन रचनाओं के बारे में प्रख्यात साहित्यकारों की समीक्षा या आलोचना भी होती है। ये समीक्षाएँ मात्र पाठक गण को ही नहीं वरन् ग्रन्थकारों को भी पुनः सोचने की प्रेरणा देती हैं।

1.6.7 समसामयिक समस्याओं का चित्रण

हरेक काल में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों और समसामयिक समस्याओं का खुला चित्रण होता है। पत्र-पत्रिकाएँ मानव केलिए अत्यंत उपयोगी हैं क्योंकि हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन की सभी समस्याओं का समावेश उनमें होता है। ये समय के अनुकूल विभिन्न विषयों पर नये-नये विचार, अलग-अलग दृष्टिकोण पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

1.6.8 साहित्य की विश्व स्तरीय प्रतिष्ठा

साहित्यिक पत्रिका में साहित्य के लगभग सभी विधाएँ प्रकाशित होती है, साथ ही साथ हिन्दी के ही नहीं दूसरी भाषा की रचनाएँ भी प्रकाशित होती है। मतलब मौलिक रचना के साथ अनूदित रचनाओं को भी स्थान देती है। दूसरी भाषा की रचनाओं को पत्रिका में प्रकाशित करके पत्रिका के साहित्यिक स्तर एवं समत्व को ऊँचा उठाता है और पाठकों को एक भाषा की नहीं, बल्कि अन्य भाषा की रचनाओं को भी पढने का मौका देता है साथ ही साथ अन्य भाषा की रचना एवं रचनाकारों को प्रतिष्ठा भी देती है। आज की सभी पत्रिकाओं में अन्य भाषा की कहानी, कविता या रचनात्मक समीक्षा एवं चर्चा छपती है। साहित्यिक पत्रिका अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को अपनाकर भारतीय साहित्य और विश्व साहित्य के विराट फलक पर अपने को प्रतिष्ठित करती है।

1.6.9 अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियों का रूपायन एवं विकास

हिंदी की आधुनिक साहित्य की एक बडी विशेषता यह है कि वह अधिकांशतया पुस्तकों के रूप में पाठकों के सामने पहूँचने के पहले पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। साहित्य की नई प्रवृत्तियाँ इसमें होनेवाले नूतन प्रयोग और नवीन दृष्टिकोण सबसे पहले पत्रिकाओं के द्वारा ही अभिव्यक्ति पाती हैं।

1.6.9.1कविता आंदोलन (नयी काव्यप्रवृत्तियों की झलक)

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के विकास के साथ नवीन काव्यविधाओं का भी विकास हुआ। सन् 1938 में पतं के *रूपाभ* के प्रकाशन से प्रगतिशील कविता का विकास हुआ। यह सचमुच सत्य है कि हरेक पत्रिका के प्रकाशन के पीछे कोई न कोई आन्दोलन जरूर होगा। 1947 में प्रकाशित प्रतीक से ही प्रयोगवादी कविता का प्रारंभ होने लगी। 1953 में निकले *नये पत्ते* के द्वारा नयी कविता की प्रथम अनुभूति हुई। नवलेखन के चतुर्मुखी रूप को 1955 में प्रकाशित *निष्कर्ष* पत्रिका में प्रस्तुत किया, जिसका संपादन धर्मवीर भारती तथा लक्ष्मीकांत ने किया है। इलाहाबाद के नौजवानों का *परिमल* नामक संगठन ने ही नई कविता द्वैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। नई कविता ने साहित्य जगत में अनेक कवियों को जन्म दिया जिन्होंने कविता को छन्द के बन्धन से मुक्ति दिलाकर नयी काव्यप्रवृत्तियों का गंभीर विवेचन किया। पत्रिका में कई सार्थक रचनाएँ प्रकाशित की। इन रचनाओं ने समकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण में अत्यधिक सराहनीय योगदान दिया। 1958 में कृति के प्रकाशन से विधा व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों के बदले मूल्यहीनता को लेकर आगे बढती है। इस पत्रिका द्वारा नवलेखन काव्यान्दोलन शुरू हुआ। उत्कर्ष पत्रिका में श्रीलाल शुक्ल की लंबी कविता *मरी हुई औरत के संभोग*के प्रकाशन से ही अस्वीकृत कविता का नाम सामने आया। बीट कविता की अभिव्यक्ति पत्रिका द्वारा, अभिनव काव्य का प्रारंभ प्रत्रिका से, युयुत्सा काव्य का *रूपाम्बरा* के माध्यम से, व्यतीत कविता का विन्यास पत्रिका द्वारा प्रतिबद्ध कविता का लहर के माध्यम से, अकविता का *अकविता पत्रिका* द्वारा हिंदी साहित्य में नई-नई काव्यान्दोलनों का विकास हुआ।

1967 में प्रकाशित *सहज कविता* पत्रिका द्वारा सहज कविता, *उन्मेष* पत्रिका द्वारा साठोत्तरी कविता *संचेतना* पत्रिका से विचार कविता का विकास हुआ। *वातायन* एवं *क ख ग* पत्रिका द्वारा हिंदी में ताजी कविता का नया आन्दोलन शुरू हुआ। आज की

लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं में हाइकू रचनायें छपती हैं, वास्तव में इसका विकास *अर्चना* पत्रिका द्वारा हुआ। नवगीत का प्रारंभ सचमुच *गीतांगिनी* पत्रिका से हुआ और बाद में वातायन पत्रिका ने इसे ऊँची उठाई। रूबाई, दोहा, मुक्तक, गजल आदि काव्यप्रवृत्तियों का हिंदी में अधिक प्रचलन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ।

1.6.9.2 कहानी आन्दोलन

हर साहित्यिक विधा के विकास में पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन पत्रिकाओं ने हिंदी कहानी के विभिन्न आन्दोलनों के गठन में उल्लेखनीय कार्य किया। आरंभिक दौर में हिंदी कहानी केलिए *सरस्वती* पत्रिका ने बडा योगदान दिया। किशोरीलाल गोस्वामी की *इन्दुमति, बंगमहिला* की *कुंभ में छोटी बहू*, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की *उसने कहा था*, रामचन्द्र शुक्लजी की *ग्यारह वर्ष* का समय, प्रेमचन्द की पहली कहानी *सौत* एवं *पंचपरमेश्वर* आदि सर्वाधिक लोकप्रिय एवं चर्चित कहानियाँ पाठकों के सामने आई। फिर *इंदू, सेवक, नवजीवन, मर्यादा, नवनीत, प्रभा* ने भी कहानी के विकास में अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभाई। *कहानी पत्रिका (1955)* से ही हिंदी साहित्य जगत में कहानी की लोकप्रियता बढने लगी। श्री भैरव प्रसाद गुप्त ने इस पत्रिका के द्वारा 'नई कहानी' आन्दोलन का नेतृत्व किया। इसी पत्रिका की लोकप्रियता को देखकर ओमप्रकाश ने दिल्ली में 'नई कहानी' पत्रिका का प्रकाशन करने लगा। इसी पत्रिका में अमृतराय सहज कहानी की बात की । सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, अकहानी का उदय भी नयी कहानी द्वारा होने लगा। 1964 में महीपसिंह के संपादन में प्रकाशित 'आधार' पत्रिका से 'सचेतन कहानी' का आरंभ हुआ। कमलेश्वर ने 'सारिका' के ज़रिए 'समान्तर कहानी' आन्दोलन चलाया। समकालीन कहानी की ओर लेखकों को मुडने की प्रेरणा राजेन्द्रयादव अपने *हंस* के संपादकत्व से दी। *हंस* के साथ *कथादेश, कथादशक, वर्तमान साहित्य, तद्भव* एवं *पहल*पत्रिकाएँ समकालीन कहानी की गंभीरता

को रेखांकित करने की कोशिश की। हिंदी साहित्य में लघु कथा एक नयी विधा है। इसे पत्र – पत्रिकाओं से प्रोत्साहन मिला और अब लघु कथा एक स्वतंत्र विधा का रूप धारण किया।

1.6.9.3 भाषा का विकास

किसी एक भाषा के प्रचार एवं प्रगति को मापने की सर्वप्रथम इकाई उसी भाषा में प्रकाशित साहित्य और पत्र-पत्रिकाएँ हैं। पत्रिकाएँ हिंदी भाषा के सर्वतोन्मुख उत्कर्ष में निरन्तर कार्यान्वित करती रहती हैं। साहित्य की विविध विधाओं के विकास के साथ ही भाषा के परिमार्जन, व्याकरण संबन्धी मानदण्ड, शब्दों के निर्माण आदि की दिशा में पत्रिकाओं का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है।

भारतेन्दु युग की सभी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने स्वभाषा उन्नती की बात कह कर हिंदी भाषा तथा नागरी लिपी केलिए अनवरत संघर्ष किया। *कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, भारत मित्र, हिंदी प्रदीप, बिहार बंधु, सारसुधा निधि, उचित वक्ता*इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी का प्रचार अपने उद्देश्य में शामिल किया था। बालमुकुंद गुप्त (1818)ने*भारत मित्र* में गोविन्द नारायण मिश्र ने*बंगवासी* में भाषा की अस्थिरता पर प्रश्न उठाया और इसके फलस्वरूप भाषा स्थिर होने लगी। आचार्य महावीर प्रसाद दिवेदी ने *सरस्वती* पत्रिका के द्वारा आधुनिक हिंदी माने खडी बोली को व्याकरणिक संस्कार प्रदान करके हिंदी को परिमार्जन एवं परिवर्धन किया। साथ ही साथ हिंदी में एकरूपता लाने का प्रयास किया। इसप्रकार *इंदु* पत्रिका जो जयशंकर प्रसाद के संपादकत्व में निकली थी खडी बोली हिंदी को नितान्त मानक बनाने में सराहनीय कार्य किया। *मर्यादा, हंस, माधुरी* आदि पत्रिकाओं का संपादन करके प्रेमचन्द ने संपर्क भाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। *वाक्, राजभाषा भारती* जैसी पत्रिकाएँ,राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास एवं प्रसार में अत्यंत परिश्रम करती रहती है।

प्रतिबंधित पत्रिकाएँ जनसामान्य में नई चेतना, नया विश्वास, सांस्कृतिक चेतना का विकास तो कर रही थी। बोलचाल के शब्दों का प्रयोग, नित नवीन शब्दों का निर्माण, दिन-प्रतिदिन घटित होनेवाली विविध प्रकार की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में निर्मित नई शब्दावली का प्रयोग पत्रिकाओं के अंतर्गत प्रयुक्त होनेवाली भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं।

किसी भाषा और साहित्य की समृद्धि को मापने का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड उसमें प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ हैं। इसप्रकार साहित्य के प्रचार, प्रसार, मूल्यांकन, दिशा परिवर्तन, संरक्षणों के स्तरों पर पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका बनी रहेगी।

साहित्य को सही दिशा देने में पत्रिका ने अनेक राहों को तलाशा। कविता, कहानी, नाटक, इंटर्व्यू, एकांकी, अनुवाद, फीचर, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, रंखाचित्र को विविध रूपों में रूपायित करने में पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। हिंदी के आज का साहित्य जिस मुकाम पर पहूँचा है, उसकी नस में जो रक्त संचरित हो रहा है, उसके पीछे पत्रिकाओं द्वारा स्थापित मानवतावादी मूल्य काम कर रहा है।

अध्याय 2

भूमंडलीकरण और भारतीय समाज

भूमंडलीकरण एक विविधोन्मुखी प्रवृत्ति है, जिससे संपूर्ण विश्व की छवी बदल रहे हैं। इसका संचालन वैश्विक अर्थव्यवस्था के हाथों यानी विश्व के कुछ विकसित देशों के हाथ में है जो अपनी पूँजीवादी व्यवस्था एवं कार्परेटों के आर्थिक नीती एवं लाभेच्छा के अनुसार कार्यान्वयन करता है। वैश्विक अर्थव्यवस्था दो मुद्दों पर केन्द्रित है – निजीकरण और नियंत्रण मुक्ति। इसे 1980 के बाद विश्व के लगभग सभी देशों के सरकारों ने अपनायी है।मुक्त बाज़ार, अर्थवाद, बाज़ार अर्थव्यवस्था, नव उदारवादी प्रवृतियों ने संपूर्ण विश्व को एक बाज़ार में परिवर्तित कर दिया है। इसका एक मात्र नारा है– पूँजी, निवेश, विकास, मुनाफा। इसके ज़रिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने विकास एवं निवेश के बहाने विकासशील एवं अविकसित देशों को पूरी तरह अपने अधीन लाने का प्रयास कर रहा है। यह एक प्रकार की दुमुँहीया रीति है जिसमें खूबियों की अपेक्षा खामियों की सूची अधिक लंबी है।

2.1 उद्‌भव और विकास

भूमंडलीकरण आधुनिक युग की एक जटिल अवधारणा है। यद्यपि इसकी जडें प्राचीन काल से शुरू हुई है, फिर भी भूमंडलीकरण का सही एवं वास्तविक रूप आधुनिक युग में औद्योगिकरण एवं नवीन आर्थिक नीतियों के प्रचार-प्रसार से शुरूहोता है। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उद्योग एवं व्यवसाय ने पूरे विश्व पर अपने लौह पंजों को फैलाया। उद्योग और व्यवसायियों ने देश-विदेश की राजनीति एवं अर्थनीति को अपने लाभ और इच्छा के अनुसार बनाने लगा। विश्व को एक बाज़ार में परिवर्तित

किया। बाज़ार या मंडी सभी राज्यों पर अपना अधिकार जमा लिया। उन्नीसवीं शताब्दी तक आते आते सूचना – प्रौद्योगिकी के क्रान्तिकारी विकास ने भूमंडलीकरण को और तेज़ गति प्रदान किया। श्यामचरण दुबे लिखते हैं कि "भूमण्डलीकरण उस सफर का नाम है जो उन्नीसवीं शती के सातवें दशक में आधुनिकता ने शुरू किया।" (श्याम चरण दुबे, 1996, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 7)[1]भूमंडलीकरण के पीछे छिपे हुए अदृश्य बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तथा विकसित साम्राज्यवादी देशों ने संपूर्ण विश्व पर अपना कब्ज़ा बना लिया है। इस प्रक्रिया पर विशाल बहुराष्ट्रीय निगमों का नियंत्रण है। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ देश या राष्ट्रों से ज्यादा ताकतवर और संप्पन हैं। इन कंपनियों ने अपने व्यावसायिक हितों केलिए राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर अनेक देशों में अपना विस्तार और प्रभुत्व बढ़ाया है।

2.2 व्युत्पत्ति

'भूमंडलीकरण' अंग्रेजी शब्द *Globalisation* का हिन्दी पद है। *Globalisation* का उद्‌भव सामाजिक और अर्थशास्त्र की अंतर्राष्ट्रिय श्रृंखलाओं को सूचित करने वाला शब्द *Globalize* से हुआ है। इस पद का सर्वप्रथम प्रयोग 1930 में प्रकाशित *Towards New Education* कृति में देखा गया था। इसमें शिक्षा के क्षेत्र में मनुष्य के अनुभवों की एक समग्र दृष्टि पर चर्चा की है। साथ ही इससे संबंधित एक अन्य पद *Corporate giants* का प्रयोग सन् 1897 में चार्लस ताज़ रस्सल्स ने किया। इस पद का प्रयोग उस समय के बडे राज्य विकास और बड़े उद्यमोंके लिए किया जाता था। 1960 तक आते-आते इन दोनों पदों का प्रयोग अर्थशास्त्री और अन्य समाजिक वैज्ञानिकों के पर्यायवाचक शब्द के रूप में होने लगा। सन् 1980 तक पहूँचते-पहूँचते यह प्रयोग मुख्य धारा में अपना स्थान ग्रहण किया। इस तरह *Globalisation* का व्यापक

---

1 सिन्धु ए :- 'वैश्वीकरण के संदर्भ में नए उपन्यास', जनविकल्प, मई 2011, पृ.सं. 94

प्रयोग आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य नीति के रूप में होने लगा। हिन्दी में इसे भूमण्डलीकरण, वैश्विकरण आदि पदों से संबोधित किया जाता है।

2.3 अर्थ एवं परिभाषा

भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण शब्दों का अर्थबोध इस प्रकार ग्रहण किया जा सकता है- सभी भूखण्ड को एक समूह में लाना, विभिन्न राज्यों को एक दूसरे से जोड़ कर एक विशाल चित्रपटल पर लाना, जिसके ज़रिए विश्व के सभी असमानताएँ समाप्त हो जाए तथा संपूर्ण विश्व को एक विशाल बाज़ार या मंडी के रूप में संकल्प किया जा सके। भूमण्डलीकरण अर्थात् 'भू' का मंडीकरण है। अमरीका जैसे विकासशील एवं पूँजीपति राष्ट्र सभी देशों को एकता के सूत्र में बाँधकर अपनी मानवतावादी दृष्टि तथा आर्थिक आधिपत्य का परिचय देना चाहते हैं। भूमण्डलीकरण केइस अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वाणिज्य नीति को कई बुद्धिजीवियों ने परिभाषित किया है।

- एब्रिडीन विश्वविद्यालय के समाजशास्त्री प्रोफेसर रोलान्ड रोबर्टसन ने भूमण्डलीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है- "the compression of the world and the intensification of the consciousness of the world as a whole".2
- समाजशास्त्री मार्टिन अलब्रो तथा एलिज़बेत किंग के अनुसार - "… all those processes by which the peoples of the world are incorporated into a single world society".3
- एनतोनी गिड्डनस् ने अपनी रचना 'The Consequences of Modernity'में भूमण्डलीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है- "Globalization can thus be defined as the intensification of worldwide social relations which

2 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization
3 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization

link distant localities in such a way that local happenings are shaped by events occurring many miles away and vice versa".[4]

- डेविड हेल्ड ने *Global Transformations* में भूमण्डलीकरण को इस प्रकार व्याख्यायित किया है- "Although in its simplisitic sense globalization refers to the widening, deepening and speeding up of global interconnection, such a definition begs further elaboration… Globalization can be located on a continuum with the local, national and regional. At one end of the continuum lie social and economic relations and networks which are organized on a local and/or national basis; at the other end lie social and economic relations and networks which crystallize on the wider scale of regional and global interactions. Globalization can be taken to refer to those spatial-temporal processes of change which underpin a transformation in the organization of human affairs by linking together and expanding human activity across regions and continents. Without reference to such expansive spatial connections, there can be no clear or coherent formulation of this term…. A satisfactory definitions of globalization must capture each of these elements : extensity (stretching), intensity, velocity and impact."[5]
- स्वीडन के प्रसिद्ध पत्रकार थामस लारसन ने अपनी किताब *The Race to the Top: The Real Story of Globalization* में भूमण्डलीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया है- "is the process of world shrinkage, of distances getting shorter, things moving closer. It pertains to the increasing ease with

4 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization
5 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization

which somebody on one side of the world can interact, to mutual benefit, with somebody on the other side of the world."[6]

- मनोरंजन महांति के अनुसार " भूमंडलीकरण वास्तव में वैश्विक पूँजीवाद विकास का पर्याय है।"[7]
- आलोक श्रीवास्तव –"भूमण्डलीकरण यानी अंग्रेजी में ग्लोबलाइजेशन एक ऐसा शब्द है जिसे उसके तमाम पर्यायवाचियों सहित पिछले डेढ़ दशक से युद्ध स्तर पर गौरवान्वित किया जा रहा है। बहुत सरलीकृत तरीके से यह शब्द प्रगति, विकास, आधुनिकता की ओर बनती हुई नयी दुनिया से जोड़ दिया गया है।"[8]
- कँवल भारती –"भूमण्डलीकरण पूँजीवादी विश्व व्यवस्था का ही एक भ्रामक नामकरण है।"[9]
- गिरीश मिश्र- "भूमण्डलीकरण का अर्थ है - अमेरिकीकरण। या तो आप अमेरिका जैसे बनें या अमेरिकी प्रभुत्व को स्वीकार कर उसके पक्ष में खड़े हों।"(गिरीशमिश्र, राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, 21 सितम्बर 2003, पृ.9)[10]

इन परिभाषाओं के सूक्ष्म अध्ययन से हम भूमण्डलीकरण को इस प्रकार समझ सकते हैं- भूमण्डलीकरण उस अंतर्राष्ट्रीय नीति को कहते हैं जिसके ज़रिए सभी देशों का आपसी संबंध बढ़ रहा है और इनके बीच की दूरियाँ कम होती जा रही है या मिट रही है। विनोद बिहारी लाल के शब्दों में –"सामान्य रूप से वैश्वीकरण का अर्थ विश्वव्यापी

---

6 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization

7 अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा 2009 अक्तुबर-डिसंबर, पृ.111

8 आलोक श्रीवास्तव :- कथादेश, मार्च 2007, पृ.31

9 कथन :- जनवरी-मार्च 2006, पृ.71

10 अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा 2009 अक्तुबर-डिसंबर, पृ.114

स्तर पर सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओं, सभ्यताओं, संस्कृतियों के परस्पर अबाधित सम्मिश्रण की प्रक्रिया है।"[11]इस प्रक्रिया के तहत अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ अब स्थानीय बनता जा रहा है और स्थानीय अब अंतर्राष्ट्रीय बनता जा रहा है। इस स्थानीयकरण और अंतर्राष्ट्रीयकरण के पीछे बाज़ार या मंडि का विशेष स्थान है। भूमण्डलीकरण केवल बाज़ार पर ही नहीं बल्कि व्यक्ति एवं समाज के सभी पहलुओं पर अपना प्रभाव डालता है।

2.4 भूमण्डलीकरण : विभिन्न पहलुएँ

जिस तरह एक सिक्के के दो पहलु होते हैं, उसी तरह हर वस्तुओं के अलग अलग पहलुएँ होते हैं। भूमण्डलीकरण के संदर्भ में यह बहुआयामी एवं इसके अनेक पहलुएँ हैं। औपनिवेशिक साम्राज्य ने कई छोटे-बड़े साम्राज्यों की जगह एक भूमंडलीय साम्राज्य की स्थापना करने के लिए कार्यरत हैं। इस साम्राज्य का आधार पूँजीवाद है। साम्यवादी सोवियट संघ के विघटन के बाद पूँजीवादी व्यवस्था ने पूरे विश्व पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया। यह अधिकार केवल आर्थिक या वाणिज्य स्तर पर नहीं बल्कि व्यक्ति और समाज के हर पहलुओं पर अपना पंजा फैलाया है। स्टेगर ने अपनी किताब *Globalization: A Very Short Introduction* में इस बात पर ज़ोर दिया कि भूमण्डलीकरण को पूर्ण रूप से समझने के लिए इसकी बहुआयामी पहलुओं पर अध्ययन करना चाहिए। उनके अनुसार भूमण्डलीकरण पाँच पहलुओं से निर्मित है - अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, पर्यावरण और विचारधारा। (Steger argues that in order to fully understand and grasp the concept and process of globalization, scholars of globalization need to take a multidimensional approach. Globalization is

---

[11] विनोद बिहारी लाल :- वैश्वीकरण अपरिमित संभावनाएँ, गहरे खतरे, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2011, पृ.सं.70

composed of five dimensions: economic, political, cultural, ecological and ideological.)12

2.4.1 अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण

इसका संबंध अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र नीति से है। भूमंडलीकरण के इस दौर में अर्थशास्त्रीय रणनीति का रूपायन महत्वपूर्ण है। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा निर्मित इस भूमंडलीकरण नीति को बनाये रखने केलिए उनके द्वारा संचालित अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र नीति का रूपायन ज़रूरी है। इसके तहत नूतन वैश्विक अर्थशास्त्र का निर्माण, व्यापार और अर्थ का अंतर्राष्ट्रीयकरण, राज्यांतर कंपनियों की बदलती शक्ति और अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्रीय संस्थाओं की उन्नत भूमिका आदि निर्णय करते हैं।

2.4.2 राजनीति का भूमंडलीकरण

इसका संबंध अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक संबंधों से है। वर्तमान संदर्भ में राष्ट्र की संकल्पना और उसका संचालन तथा वैश्विक प्रशासन का योगदान आदि की रणनीति बनाते हैं।

2.4.3 सांस्कृतिक भूमंडलीकरण

व्यापार और वाणिज्य के ज़रिए केवल वस्तुओं का आदान-प्रदान नहीं होता। बल्कि संस्कृति का भी आदान-प्रदान होता है। धर्म, संस्कार, कला, अर्थ, भाषा, चिह्न आदि का आदान-प्रदान होता है। इससे एक वैश्विक संस्कृति का रूपायन होता है।

2.4.4 पर्यावरण का भूमंडलीकरण

इससे तात्पर्य वैश्विक पर्यावरण समस्याओं से है। इसमें जनसंख्या वृद्धि, अन्न और जल की उपलब्धि, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि, भौम्य मौसम में परिवर्तन आदि की योजनाएँ वैश्विक दृष्टि से रूपायित किया जाता है।

---

12 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization

2.4.5 विचारधारा का भूमंडलीकरण

भूमंडलीकरण प्रक्रिया को कार्यान्वित बनाये रखने के लिए उचित विचारधारा का प्रचार ज़रूरी है। सोवियट संघ के विघटन के बाद पूँजीवादी विचारधारा ने अपना आधिपत्य स्थापित करना शुरू किया। विश्व के विभिन्न देशों में अपने बाज़ार को फैलाने के लिए पूँजीवादी विचारों, चिह्नों, सरकारी नीति आदि का प्रचार हो रहा है।

2.5 भूमंडलीकरण - आधार बिन्दु

सन् 2000 में अंतर्राष्ट्रीय मोनटरी फंड ने भूमंडलीकरण के चार आधार बिन्दुओं पर संकेत किया है- व्यापार और लेन-देन, पूँजी और निवेश, प्रवास और लोगों का प्रयाण तथा ज्ञान का वितरण । (In 2000, the International Monetary Fund (IMF) identified four basic aspects of globalization: trade and transactions, capital and investment movements, migration and movement of people and the dissemination of knowledge.)[13]

प्रस्तुत विचारों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण एक बहुआयामी प्रवृत्ति है जिसके विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन अनिवार्य है। और इसका मूल आधार बाज़ार, व्यापार और पूँजी केन्द्रित है। विकास इसका लक्ष्य है और इसकी पूर्ति उदारीकरण, निजीकरण, बाज़ारीकरण और उपभोक्तावाद के ज़रिए कार्यान्वित किया जा रहा है।

2.5.1 उदारीकरण और निजीकरण

पिछले कुछ वर्षों में विश्व के तमाम विकासशील देशों में भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया अलग-अलग पैमानों पर कार्यान्वित की जा रही है।

---

[13] http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization

उदारीकरण की संस्कृति यह है कि उदार होना देश के मेहनतकश मज़दूर के लिए नहीं बल्कि देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए है। विदेशी कंपनियाँ आज भारतीय अर्थव्यवस्था को खोखला कर रही हैं। व्यापार में कार्यरत ये कंपनियाँ प्रारंभ में अपना माल सस्ते में बेचती हैं, लेकिन जब बाज़ार में स्थान बना लेती हैं तो कीमतें चौगुना कर देती हैं। ग्राहकों को अनिवार्यतः ऐसे बहुराष्ट्रीय स्टोर्स से महँगा माल खरीदने के लिए मज़बूर किया जाता है और यहाँ के छोटे-मोटे दूकानदार और व्यापारी बेरोज़गार हो जाते हैं।

कृषि के क्षेत्र में विदेशी कंपनियों की घुसपैठ से भारतीय इतिहास में पहली बार किसान बड़े पैमाने पर आत्महत्या करने को मज़बूर हो गये। कारखानों से मज़दूरों की भारी संख्या में छँटनी शूरु हो गयी। विदेशी कंपनियों की गिद्ध दृष्टि किसानों की ज़मीनों पर पड़ गयी है, जिससे देश की खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ती दिखाई दे रही है। आज भारत में इस नीति के कारण कई समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है। विदेशी कंपनियाँ यहाँ के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण कर रहे हैं। भारत के स्थानीय एवं निजी उत्पादों एवं उत्पन्नों को कम महत्व देते हुए विदेशी उत्पादों एवं उत्पन्नों को अधिक महत्व देता आ रहा है। उदारीकरण से आज भारत विदेशी उत्पन्नों के लिए एक विशाल मंडी बन गया है।

निजीकरण भूमंडलीकण का सशक्त हथियार है। भूमंडलीकरण के इस दौर में सरकार अपने उत्तरदायित्व को भूल चुका है। सरकार अपने कर्तव्य से दूर जा रहा है। सरकार समाज कल्याण से अपना हाथ धो रहा है। इसके लिए सरकार अपने अधीनस्त कार्यालयों को निजी व्यक्ति या संस्थाओं को सौंप रहा है। इस दौर में सरकारी संस्थाओं का तेजी से निजीकरण किया जा रहा है। इसका वास्तविक उद्देश्य घाटे में चल रहे उद्यमों को लाभ की ओर ले जाना नहीं बल्कि मुनाफ़ा देने वाली संस्थाओं को अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए निजी क्षेत्र के मालिकों के नाम बेच देना है। आज सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याणकारी योजनाएँ आदि एक-एक कर विदेशी कंपनियों

को सौंपा जा रहा है। साधारण जनता इसके लाभ से हमेशा वंचित रहती हैं। जे.एन.यू के प्रोफेसर अभिजित पाठक लिखते हैं सिर्फ़ एक छोटा मध्यवर्ग ही इससे खुश हैं जिसके पास भूमंडलीकरण के बाद अकूत पैसा आया है। इस पैसे को कमाने के लिए उन्होंने कोई बड़ी मेहनत नहीं की है। भूमंडलीकरण के बाद आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा बाज़ार है और बाज़ार को उपभोक्ता की ज़रूरत है।

भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया में कुछ देशों के लोग अवश्य लाभान्वित हो रहे हैं। लेकिन अमीर और गरीब देशों में ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज्यादा हैं जोइसके लाभों से वंचित हैं ही उसकी हालत पहले से भी खराब हो गयी है। वे या तो हाशिये पर डाल दिये गये हैं या तरह-तरह के अपवर्जनों के शिकार हैं।

2.5.2 बाज़ारवाद

भूमंडलीकरण का दूसरा नाम है बाज़ारवाद। बाज़ार इसका केन्द्र बिन्दु है। बाज़ार की अपनी एक संस्कृति है कि वह अपने उत्पादों को बेचने के लिए दूर-दूर तक जाता है और हर प्रतिरोध को तोड़ता है। इसकी ताकतें इतनी शक्तिशाली है कि वे भूमंडलीकरण के माध्यम से स्वयं को संगठित कर रही हैं। उदारीकरण और मुक्त बाज़ार ने चंचल पूँजी की आवाजाही के सारे दरवाज़े खोल दिए हैं। तीसरी दुनिया के देशों में लोग पश्चिमी सुख-साधनों के पीछे अंधी दौड़ लगा रहे हैं। विज्ञापन की मायावी दुनिया लोगों को अपने जाल में फँसा रही है। ऐसे समाज में मनुष्य मात्र उपभोक्ता बनकर रह जाता है। राजकिशोर ने अपनी किताब 'उदारीकरण की नीति' में वस्तु विनिमय प्रथा को बाज़ार का अत्यंत प्रारंभिक रूप मानते हुए उसकी वर्तमान स्थिति को इस प्रकार बताया है कि वह पूँजीवाद की छत्रछाया में एक आततायी व्यवस्था भी पैदा करती है, जो स्वभाव से ही किसी एक देश तक सीमित नहीं रह सकती।' आज भारतीय समाज एक विशाल बाज़ार बन गया है विशेष कर केरल। बाज़ार ने हम भारतीयों के हालचाल, वेश-भूषा, खान-

पान, व्यवहार, सोच, भाषा आदि को बदल दिया है। बाज़ारवाद व्यक्ति को संचय, भोग और धन का लालच दिखाता है। बाज़ार का व्यक्तित्व अब हम लोगों ने अपना लिया है। बाज़ार, समाज में वस्तुओं की माँग बढ़ती है। इसके लिए वह विज्ञापन का सहारा लेता है। विज्ञापन लोगों के मन और कमियों पर धावा बोलता है। इससे लोग आवश्कता की पूर्ति के लिए तथा अनावश्क रूप से उत्पाद खरीदता है। इस तरह उपभोग बढ़ता है। इसे उपभोगवाद कहते हैं। बाज़ार का संस्कार उपभोगवाद है।

2.5.3 उपभोक्तावाद

वैश्वीकरण के दौर में जिस संस्कृति का रूपायन हुआ है उसे उपभोक्तावादी संस्कृति कहते हैं। इस संस्कृति ने भारत को ही नहीं संपूर्ण विश्व को अपने काले साये में बाँध रखा है। वैश्वीकरण एवं इलक्ट्रोनिक मीडिया ने उपभोक्तावाद की संस्कृति को फैलाया है। वर्तमान युग में उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रचार ने इंसानियत, मानवीय गरिमा, सामाजिक प्रतिबद्धता और मानवीय मूल्यों पर आधारित हमारे समाज को तहस-नहस किया है। इसने समाज को मनोरंजन, विलासता में डुबोकर उसे जटिल बना दिया है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, क्रेडिट कार्ड आदि ने युवा पीढ़ी को एनिमेटेड सपनों में डुबो दिया है। उपभोक्तावाद ने मानवीय, पारिवारिक और भावनात्मक संबंधों को स्वार्थ, अलगाव, बिकाऊ चीज़ और धन के संबंधों में बदल दिया है। खरीददारी खुशी और झूठी शान का पर्याय बन गयी है। आज बाज़ार में सब कुछ उपलब्ध हैं और सब कुछ बिकता है। उत्पादों को बेचने केलिए बाज़ार व्यक्ति, समाज, संस्कृति, संस्कार और भाषा को माध्यम बनाता है।

2.6 भूमंडलीकरण का समाज पर प्रभाव

भूमंडलीकरण के सैद्धांतिक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भूमंडलीकरण का प्रमुख उद्देश्य संपूर्ण विश्व को एक सूपरमार्केट में परिवर्तित करना है। भूमंडलीकरण ने

संपूर्ण विश्व में ज़ोरदार परिवर्तन लाया है। यह परिवर्तन अनुकूल और प्रतिकूल रीति से हुआ है। अगर देखा जाए तो इसका प्रतिकूल प्रभाव ही अधिक है। प्राथमिक दृष्टि से भूमंडलीकरण आम समाज के लिए लाभदायक नज़र आता है, लेकिन इसका विशेषण भेड के खाल पहने लोमडी से की जा सकती है। इसने विश्व के अधिकतर लोगों को गरीबी और विनाश की ओर ढकेला है, जबकि अमीरों को और अधिक अमीर बनाया है। सच तो यह है कि वैश्वीकरण का लाभ उसके समर्थक देशों के सभी जनों को नहीं मिल रहा है। ऐसे देशों में आम जनता वैश्वीकरण के लाभ से बहुत दूर हैं। अमेरिका में भी चौदह प्रतिशत गरीब लोग हैं जो अपनी आम समस्याओं से जूझ रहे हैं। 'कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण देखने में सुन्दर शब्द लगता हो, पर वास्तव में यह एक भयानक अर्थों वाला शब्द है। यह शब्द बडे और पूँजीवादी देशों द्वारा गरीब देशों पर थोपा गया है। वैश्वीकरण से केवल पूँजीवादी देश ही मनचाहा लाभ पा रहे हैं। गरीब एवं कमज़ोर देश तो वैश्वीकरण के जाल में कठपुतली बनकर रह गये हैं। वे तो सिर्फ थोपी गयी रास्तों का ही पालन करने में मज़बूर है। वे चाहते हुए भी कुछ कर नहीं सकते।'[14] विश्व के कुछ प्रान्तों में चलने वाले युद्ध, आतंकवादी प्रवृत्तियाँ, सामाजिक शोषण, प्राकृतिक शोषण, वंशीय हत्या, संस्कृतिक विनाश सभी भूमंडलीकरण का उपोत्पाद है। भूमंडलीकरण में अर्थ व्यावस्था के साथ-साथ संस्कृति, सभ्यता, विचार, चिंता आदि सभी का भूमण्डलीकरण है, यानी व्यक्ति के अन्तर्जगत का भूमडंलीकरण है।

आज जिसे वैश्वीकरण के रूप में प्रचरित किया जा रहा है, वह विशुद्ध रूप में अमरीकीकरण है और अब दुनिया को अमरीका के आर्थिक और सांस्कृतिक वर्चस्व को स्वीकार करना होगा। इस भूमण्डलीकरण के चलते बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जो जाल कर्जदार देशों में फैला है, उसने उन देशों के पर्यावरण संतुलन को तो भारी क्षति पहूँचाई

---

[14] अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा, अक्तूबर-सितंबर 2009, पृ.सं.116.

ही है, उनके प्राकृतिक संसाधनों को अपने आर्थिक हित के चलते बरबाद और प्रदूषित किया है। प्रकृति के वे उन्मुक्त क्षेत्र जहाँ साधारण से साधारण जन सहजता से आते-जाते थे, रिसोर्ट्स में बदल गए हैं और साधारण जन के लिए वे निषिद्ध क्षेत्र हो गए हैं। वन्य पशुओं के अभयारण्यों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने सेंध लगाई है, परिणाम स्वरूप, वन्य पशु मैदानों और बस्तियों में आने को विवश हुए हैं, जहाँ वे मार दिए जाते हैं। लोकजीवन और लोकसंस्कृति पर भूमंडलीकरण ने अपना गहरा प्रभाव डाला है और यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा भूमण्डलीकरण का बाजार तंत्र इसी प्रकार चलता रहा तो आगे के समयों में लोक संस्कृति तथा लोकजीवन की छवि कहाँ तक जीवित रह पाएगी, कहा नहीं जा सकता।

2.6.1भूमण्डलीकरण के दुषप्रभावों पर विद्वानों की राय

यह बात सच है कि भूमण्डलीकरण ने संपूर्ण विश्व को एक छोटे ग्राम में बदल दिया है। अनेक संभावनाएँ खोल दी है। फिर भी भूमण्डलीकरण का विरोध विश्व के कई भागों में हो रहा है। भूमण्डलीकरण की गलत और हानिकारक नीतियों के बारे में बुद्धिजीवियों ने अपनी राय व्यक्त किया है।

- सच्चिदानन्द सिन्हा - भूमण्डलीकरण दरअसल पूँजीवाद की तात्कालिक एकछत्रता का उद्घोष है। लेकिन भूमण्डलीकरण शब्द से जैसी एकता का भ्रम होता है, हकीकत वैसा है नहीं।[15]
- शंभूनाथ - भूमण्डलीकरण बिना रक्तपात और रेकटोक के लूट का दूसरा नाम है। यह लूट प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की ही नहीं है, यह एक सांस्कृतिक लूट और गुण्डागर्दी भी है।[16]

---

15 सच्चिदानन्द सिंहा :- भूमण्डलीकरण की चुनौतियॉ, पृ.सं.10

16 अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा 2009 अक्तुबर-डिसंबर, पृ.113

- डॉ. एम.के.पंधे – जो आज ग्लोबलाजेशन हो रहा है वह वित्तीय वैश्वीकरण है, यानी किसी भी देश की पूँजी किसी भी देश में जा सकती है। मुक्त व्यापार के नाम पर यह किया जा रहा है।'[17]

वैश्वीकरण एक तरह से दादागिरी ही है, धनी देशों की। धनी देश कई तरह के राजनीतिक और आर्थिक हस्तक्षेप करके अपने अधीनस्थ उपनिवेशों की तरक्की के रास्ते बन्द करते हैं ताकि बन्द रास्तों वाले उनके पैरों में गिरें, उनसे मदद की गुहार करें। विश्व राजनीति एवं अन्य देशों में अमरीकी हस्तक्षेप इसका उदाहरण है। भूमण्डलीकरण के द्वारा पूँजीवादी संस्कृति अन्य छोटी - छोटी संस्कृतियों को मिटा रही है, वह पूरे विश्व को एक संस्कृति में पिरोना चाहता है। "भूमण्डलीकरण का यह अत्यन्त खतरनाक पहलू है जो जातीयताओं की पारम्परिक स्मृतियों एवं सांस्कृतिक पहचान को ही नष्ट करता है जिसके बल पर अपना वजूद कायम रखने केलिए वे प्रायः संघर्षशील होती है। भूमण्डलीकरण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के एक ऐस रूप प्रकट करता है जो राष्ट्रों के आर-पार पारस्परिक मेल-जोल से नयी संस्कृतियों के निर्माण और विकास को नहीं बल्कि संस्कृतियों के दमन और उत्पीडन के कारण वर्चस्ववाली संस्कृति के आक्रामक रूप को ही दर्शाता है।"[18]

वैश्वीकरण के इस युग में व्यावसाय और नौकरी में परिवर्तन आया है। रूसी क्रान्ती के बाद पूरे विश्व में मेहनत और मज़दूरी करने वालों के लिए आठ घंटे काम करने का नियम बन गया। लेकिन भूमण्डलीकरण के संदर्भ में यह 24 घंटे बन गया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में, प्रमुख रूप से कंप्यूटर व्यवसाय के क्षेत्र में कामकाज की संस्कृति में बदलाव देखा जा सकता है । वर्क क्लचर में जो परिवर्तन देखा गया है इससे व्यक्ति

---

17 वहीं, पृ.114

18 अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा 2009 अक्तुबर-डिसंबर, पृ.115

के पारस्परिक संबन्धों में भी बदलाव दिखाई पडने लगा। व्यावसायिक क्षेत्र में होने वाले पूँजीवादी परिवर्तनों ने लोगों से अपनी ज़मीन छीनी। व्यावसायिकता और वैश्वीकरण की नीतियों के दबाव से खेतों के स्वरूप में भयंकर परिवर्तन हो रहा है। जिससे किसान और मज़दूर के बीच संबन्धों में बदलाव देखा गया है। इन जनद्रोही नीतियों ने किसान को गरीब और मजदूर को दरिद्र बना दिया है।

बाज़ारवाद ने सूचना प्रौद्योगिकी को अत्यधिक महत्व दिया। मीडिया, पूँजीवादी विचारधारा के प्रचार में एक सशक्त माध्यम या उपकरण बना। चकाचौंध भरी मीडिया की इस दुनिया ने व्यक्ति जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। बाज़ारवाद तथा मीडिया की भरमार में रिश्ते टूट रहे हैं, मूल्यों का ह्रास हो रहा है। यहाँ आदमी की कीमत पूछने की स्थिति आ गयी है। स्त्रियों की स्थिति दर्दनाक है, वह बिकाऊ चीज़ बन गयी है। वह सिर्फ काम या सेक्स की पूर्तिे की वस्तु बनकर रह गयी है। बाजारों एवं विज्ञापनों में उसकी बडी माँग है। मॉडलों की दुनिया में आकार सौष्ठव वाली तथा अल्पवस्त्रधारी स्त्रियों की माँग ज्यादा है। आम में बौर आने की तरह यौवन आने पर उसका दर निश्चित किया जाता है। यह युग वैश्वीकरण का है। वैश्वीकरण आत्मतत्व को कम मानता है और शरीर को अधिक।

इस तरह भूमण्डलीकरण का समाज पर सकारात्मक प्रभाव से ज्यादा नकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है। अधिकांश देशों में वैश्वीकरण का एक असुंदर रूप सामने आया है कि एक ही स्थान पर भयावह असमानता वाली जीवन पद्धतियाँ साथ-साथ उभरी है। सातवें आसमान को छूती जीवन शैली के साए में ही नाली का जीवन भी पनप रहा है और यह असमानता दिनों दिन बढती जा रही है। भारत भी इस नीति से प्रभावित है।

2.7 भूमंडलीकरण और भारतीय समाज

विश्व में भारत का अपना एक अलग स्थान है। विश्व की पुरातन सभ्यताओं में से एक है अपना भारत। भारतीय समाज और संस्कृति अनोखी है। हमारा देश विविधताओं से भरा हुआ है। अलग-अलग लोग, भाषा, संस्कार, वेश-भूषा, खान-पान, फसल आदि इस देश की खासियत है। इस देश की एक विशेषता यह है कि जो भी लोग यहाँ आते हैं वे यहीं रह जाते हैं। इतिहास साक्षी है कि विदेशियों ने आक्रमण और व्यापारिक संबंधों के ज़रिए इस देश पर अपना अस्तित्व बनाया है साथ ही अधिकार भी ज़माया है। प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध इस देश पर विश्व के प्रमुख उपनिवेशी ताकतों और व्यापारियों की नज़र रही। चीन, अरब, पुर्तगाल, अंग्रेज़, फ्रान्स आदि देशों से लोग यहाँ आए और कुछ ने इस देश पर अपना अधिकार भी जमाया। उनके आगमन का प्रमुख लक्ष्य व्यापार रहा। आधुनिक संदर्भ में भी विदेशियों का आगमन हो रहा है। उनका इस देश पर अपना व्यापारिक एकाधिकार भी स्थापित हो रहा है। इस आधुनिक रीति का व्यापारिक उपनिवेशीकरण भूमंडलीकरण के ज़रिए हो रहा है। भारत के लिए भूमण्डलीकरण का अर्थ है गुलामी का एक नया मंत्र। डॉ. के.एन. पणिक्कर के शब्दों में 'भारत सदृश्य राष्ट्रों के लिए वैश्वीकरण परतंत्रता का पैगाम है। अमेरिका, जापान एवं जर्मनी के लिए इसमें उत्तेजक संभावनाएँ हो सकती है। लेकिन विश्व के कमज़ोर राष्ट्रों यथा भारत, बंगलादेश एवं आफ्रिका के लिए ऐसे ही अपेक्षा रखना ख्याली पुलाव साबित होगा ।('वैश्वीकरण, संस्कृति और सांप्रदायिकता', पृ. 11)।'[19]

[19] अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्धसमीक्षा, अक्तूबर-सितंबर 2009, पृ.सं.113.

2.7.1 भारत में भूमंडलीकरण का आरंभ

1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत अपने प्राकृतिक संसाधन, मानव संसाधन, राजनैतिक तथा नवीन आर्थिक नीतियों के ज़रिए विश्व में एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरने लगा। इसके लिए भारत सरकार ने औद्योगीकरण और व्यापार पर विशेष महत्व दिया। इसके लिए निवेश की आवश्यकता है। इस संदर्भ में भारत सरकार ने अपने व्यापार और विदेश नीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। 1961 तक व्यापार और निवेश नीति पर भारत सरकार ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। 1962 से 1977 तक हमारा व्यापार और निवेश नीति का मुख्य उद्देश्य स्थानीय व्यवसाय और अर्थव्यवस्था की वृद्धि रहा। 1977 के बाद हमारी वाणिज्य नीति मुख्यतः उदारीकरण पर रहा। सन् 1991 तक आते-आते भारत सरकार ने देश का वातायन उदारीकरण और निजीकरण प्रक्रिया के लिए पूर्ण रूप से खोल दिया। सन् 1994 में विश्व व्यापार संगठन के गाट्ट (GATT – General Agreement for Trade and Traffic) समझौता में हस्ताक्षर करने के साथ-साथ भारत का द्वार भूमंडलीकरण के लिए खुल गया। इस वातायन के ज़रिए भूमंडलीकरण के उन्नायकों में से प्रमुख देश अमरीका ने अपना व्यापारिक एवं निवेशी जाल फैलाया। "आज की भूमण्डलीय संस्कृति के ऊपर ***अमेरिकन अंब्रेला*** तना हुआ है। इसलिए भारत के बहुत से समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री उसे बिना किसी संकोच के अमेरिकीकरण या अमरिकावाद कहते हैं।"[20] इतना ही नहीं आज संसद में एफ.डी.आई 'विदेशी प्रत्यक्ष निवेश'(FDI – Foreign Direct Investment) बिल को पारित करते हुए भारत देश को पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों के हाथों में सौंप दिया।

---

[20] कृष्णदत्त पालीवाल :- भूमण्डलीकरण और साहित्य, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई - अगस्त 2011, पृ.सं. 201.

2.7.2 भूमंडलीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव

स्टेगर द्वारा बताए गए भूमण्डलीकरण के पाँचों पहलुओं ने भारतीय समाज में ज़ोरदार परिवर्तन लाया है। साथ ही इसका प्रतिकूल और अनुकूल प्रभाव देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन हुआ है उसी का प्रभाव है यह उदारीकरण, निजीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद। इस भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था को भारत में फैलाना राजनीति के ज़रिए ही संभव है। और राजनीति को प्रभावित करने के लिए विचारधारा का भूमंडलीकरण आवश्यक है। भूमंडलीकरण की विचारधारा यानी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की विचारधारा।

2.7.2.1 भारतीय बाज़ार

एक समय ऐसा था जब विदेशी चीजें खरीदने के लिए भारत के महानगरों के कुछ गिने चुने दूकानों में जाना पड़ता था। विदेशी वस्तुएँ साधारण जन के लिए अपनी पहूँच से बाहर थी। लेकिन जब से भारतीय अर्थव्यवस्था ने बाज़ार नीति में भूमंडलीकरण के अनुरूप परिवर्तन लाया तो विदेशी वस्तुओं का भारतीय बाज़ार में सुलभ रूप से प्रवाह होने लगा। धीरे-धीरे विदेशी वस्तुओं ने हमारी आम ज़िन्दगी में स्थान लेने लगा। आज जिसके पास पैसा है वह आसानी से विदेशी वस्तुएँ स्थानीय बाज़ार से खरीद सकता है। उसका सबसे बडा उदाहरण हमारे सड़कों में बढ़ते विदेशी कारों की संख्या। अमरिका, आस्ट्रेलिया, चीन आदि देशों से आने वाले सेब, फल, सब्जी, विदेशी खाद्य पदार्थ आदि। उसी तरह निःशुक्ल व्यापार नीति (Free Trade Agerment) ने भारत में उत्पादित या भारत में प्राप्त सभी वस्तुएँ कम दामों में बिना सीमा शुल्क दिये विदेशों से यहाँ आ रहा है। और यहाँ प्रमुख तथा महंगी चीजें विदेशो में निर्यात किया जाता है। बाज़ार में कम दामों में उपलब्ध विदेशी वस्तुओं के कारण देशी वस्तुओं की माँग कम हो रहा है। इससे यहाँ के उत्पादकों और किसानों को बहुत नुक्सान हो रहा है। इस व्यापार

नीति ने भारत के किसानों को विशेष कर समाज के निम्न स्तर के लोगों को आत्महत्या के लिए मज़बूर करते हैं। आज भारतीय बाज़ार में विश्व के सभी चीज़े उपलब्ध हैं। इस बाज़ार ने भारतीय समाज का नज़रिया ही बदल दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति की जड़ यहाँ गहराई से फैल चुकी है। यहाँ के लोगों में उपभोग की नशा चढ़ा दिया है। इस बाज़ार या मंडी के ज़रिए वस्तुएँ ही नहीं बल्कि उत्पादनों के साथ साथ उस देश की संस्कृति, खुशबू, विचार आदि यहाँ आयात किया जाता है। "बाज़ार का विस्तार करने के लिए पूँजीवादी देशों ने कई प्रकार की रणनीतियाँ तैयार की जिसमें से सबसे बड़ा बाजार सौंदर्य प्रसाधनों से जुड़ा हुआ है। जिस कारण से अचानक तीसरी दुनिया की औरतों को सुंदर घोषित किया जाने लगा, जिसने विश्व सौंदर्य – प्रतियोगिता के बहाने बाज़ार को और भी ज्यादा भौगोलिक विस्तार प्रदान किया है। सौंदर्य को विश्वस्तरीय प्रतियोगिता के माध्यम से एक ऐसा रोमांच पैदा किया, जिसने सौंदर्य के मानकीकरण में, बाज़ार में सौंदर्य को उपभोग की वस्तु बनाकर उपभोक्ता वर्ग के स्वरूप में और भी इज़ाफा किया है।"[21] सुस्मिता सेन, ऐश्वर्या राय आदि इसका उदाहरण हैं। भारतीय बाज़ार सौंदर्य वस्तुओं के लिए गोदाम है।

2.7.2.2 भारतीय मीडिया

जिस तरह बाज़ारीकरण ने संपूर्ण विश्व की सीमाओं को मिटा दिया है उसी तरह भूमंडलीकरण के इस युग में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। सूचना प्रौद्योगिकी की नूतन प्रवृत्तियों ने मीडिया को असीम बना दिया। कंप्यूटर और इंटरनेट ने समय और दूरी को कम कर दिया है। आज मीडिया भूमंडलीकरण नीति के प्रचार का माध्यम या हथियार बन गया है। भूमंडलीकरण के इस दौर में देश-विदेश के सभी मीडिया को पूँजीवादी शक्तियाँ खरीद रहे हैं। भारतीय मीडिया भी बिक गया है।

---

[21] कुमार भास्कर :- भूमण्डलीकरण और स्त्री, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ.सं, 8

आज विश्व के अधिकतर मीडिया पूँजीवादी तथा अंतर्राष्ट्रीय मीडिया जगत के बेताज बादशाह मरडोक ने अपने अधीन कर लिया है। मीडिया अब उन निजी व्यक्तियों के हाथों में हैं जो भूमंडलीकरण और साम्राज्यवादी पूँजीवादी विचारधारा के प्रवर्तक हैं। मीडिया के ज़रिए आम आदमी को वह गुमराह किए जा रहे हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में पूँजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने केलिए मीडिया के ज़रिए, विभिन्न कार्यक्रमों के ज़रिए जनता को व्यस्त रखते हैं। लोगों को टी.वी और इंटरनेट के सामने बैठने केलिए मज़बूर करते हैं। मीडिया के ज़रिए पूँजीवादी विचारों को लोगों के दिलो दिमाग में ठूस देते हैं। लोगों को रियालटी शो, बेतुकी मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों में कैद रखना चाहता है जिससे लोग देश-विदेश में हो रहे पूँजीवादी और साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ आवाज़ न उठाये।

पूँजीवादी, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँइन मीडियाओं के माध्यम से बाज़ार के लिए निर्मित साधनों का विज्ञापन करते हैं और इन विज्ञापनों के चकाचौन्ध में लोग खोकर इन चीज़ों का उपभोक्ता बन जाते हैं।

केबल और उपग्रहों के ज़रिए विश्व के सभी टी.वी चैनल आज घर बैठे-बैठे देखे सकते हैं। इसके ज़रिए बहुमुखी संस्कृति, विचारधारा, जीवन रीति, भाषा आदि से हमारा संपर्क आसानी से संभव है। इससे हमारी सोच, विचार, जीवन रीति, स्वाद आदि में बदलाव लाया जा सकता है। यह सब हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। भूमंडलीकृत मीडिया का प्रभाव व्यक्ति और समाज में देखा जा सकता है। मीडिया के ज़रिए अच्छी और बुरी बाता लोगों तक आसानी से पहूँचती है। हम मनुष्य उस बकरी की तरह है जो इस ओर चरते समय दूसरी ओर उसे हरियाली नज़र आती है।

मीडिया की एक और खूबी यह है कि मीडिया उसकी भाषा और विचार बोलती है जो उसको चलाता है। यहाँ की अधिकतर मीडिया पर पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, धार्मिक

संस्थाओं, स्वार्थी राजनेता आदि का आधिपत्य है। इसीलिए भारत का अधिकतर मीडिया इन्हीं लोगों की भाषा और विचारधारा का प्रचार करते हैं। लोगों को वे भ्रम में रखते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि मीडिया अपने स्वार्थ लाभ के लिए खुद खबरें बनाती है। लोगों को गलत फहमी में डालते हैं। इतना ही नहीं एक देश की सरकार को गिराने और बनाने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका भी रही है। मीडिया के ज़रिए ही पूँजीवादी या साम्राज्यवादी शक्ति अपनी नीतियों के कार्यान्वयन केलिए अनुकूल सरकार या नेताओं को अधिकार में लाते हैं। और इन नेताओं के ज़रिए भूमंडलीकरण या पूँजीवादी नीतियों को देश में लागू करते हैं।

बाज़ारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में नई पीढ़ी या युवा पीढ़ी पर मीडिया का अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता है। मीडिया द्वारा प्रसारित किए जाने वाले मनोरंजनात्मक तथा एबसेर्ड कार्यक्रमों में युवा पीढ़ी फँस गये हैं। आज की युवा पीढ़ी चकाचौन्ध और मनोरंजन में इस तरह फँसे हुए हैं कि उनकी तर्क शक्ति, सोच आदि खो चुके हैं। वे कठपुतली बन गये हैं।

2.7.2.3 भारतीय भाषा

'कोस-कोस पर पानी बदले दो कोस पर भाषा'

भाषा परिवर्तनशील है। इसमें देश, काल और वातावरण के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। भारतीय भाषाओं के संदर्भ में बहुत पुराने समय से ही भाषाओं में परिवर्तन और नए-नए भाषाओं का रूपान्तरण होता आ रहा है। विभिन्न धर्म और संस्कारों के परस्पर मेल से यहाँ नयी भाषा का उद्‌भव हुआ है। आज भूमंडलीकरण ने भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया है। जिस तरह बाज़ार के ज़रिए संस्कृति का लेन देन होता है उसी तरह भाषा का भी बाज़ार में आदान-प्रदान होता है। भूमंडलीकरण के इस संदर्भ में भारतीय भाषाओं पर जो प्रभाव हुआ है उसे हम दो तरह से देख और

समझ सकते हैं। एक, भारतीय भूखण्ड या राज्यों के या यहाँ की स्थानिय भाषाओं के बीच जो लेन-देन प्रक्रिया चल रही है। दूसरा, विश्व भाषाओं, मुख्यतः भारत से व्यापारिक संबन्ध रखने वाले देशों की भारतीय भाषाओं के साथ होने वाली लेन-देन प्रक्रिया और उसका प्रभाव।

राज्यान्तर दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी भाषा का अब बहुत महत्व बनता जा रहा है। हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में अब विशेष भूमिका अदा कर रही है। अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से देखें तो भारतीय भाषाओं का विशेष महत्व बढ़ता जा रहा है। यहाँ भाषा का महत्व लोगों के संपर्क, व्यापार आदि के ज़रिए हो रहा है। भारत में भूमंडलीकरण के इस दौर में कृषि और पारंपरिक उद्योगों का ह्रास हो रहा है। सब लोग जल्द से जल्द पैसे कमाने केलिए तथा अपनी मजबूरियों के कारण मज़दूर बन रहे हैं। नवीन उद्योगों और सोफ्टवेयर इंडस्ट्री एवं आउटसोर्सिंग के कारण सभी लोग सफेद पट वाले उद्योग चाहते हैं। यही नहीं उद्योग और कामकाज की तलाश में लोग भारत के भीतर और बाहर जाकर रहने लगे हैं। इन सब के ज़रिए भाषाओं का आदान-प्रदान होता रहता है। इसके अलावा बाज़ार में जो भाषा बिकती है उससे भी भारतीय भाषाओं में भूमंडलीकरण का प्रभाव देखा जा सकता है। बाज़ार के उत्पादनों को बेचने केलिए स्थानीय भाषाओं के ज़रिए ही आम लोगों तक पहूँचा जा सकता है। इस तरह उत्पादनों के विज्ञापनों के ज़रिए जिस भाषा का प्रयोग एवं उपयोग यहाँ हो रहा है उससे आधुनिक भारतीय भाषाओं में बहुत अधिक परिवर्तन देखा जा सकता है और यह परिवर्तन भाषा के प्रयोग, लेखन, उपयोग, अर्थ और अभिव्यक्ति आदि दृष्टि से हो रहा है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों का आपसी लेन-देन इस भू-मंडी में हो रहा है।

2.7.2.4 भारतीय संस्कृति

प्रत्येक देश की , लोगों की और समाज की अपनी एक संस्कृति होती है। जहाँ भी लोग जाते हैं उनके साथ संस्कृति भी जाती है। इतिहास साक्षी है कि भारत में विभिन्न संस्कृतियों का आगमन मुख्यतः व्यापार और वाणिज्य के द्वारा हुआ। भूमंडलीकरण के इस संदर्भ में व्यापार और वाणिज्य ने यहाँ कई संस्कृतियों को अपने साथ लाया है। वैश्वीकरण के माध्यम से सभी संस्कृतियों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है न कि उनमें समरसता लाने का प्रयास। वस्तुतः सभी महान संस्कृतियों के मूलभूत तत्व समान ही है जैसे करुणा, सहिष्णुता, समन्वय, समता एवं कौटुंबिक समरसता। सभी संस्कृतियों का केन्द्र-बिन्दु *वसुधैव कुटुंबकम्* है पर वैश्वीकरण का यह लक्ष्य धन, भौतिक साधनों सामग्रियों तथा सुविधाओं के बल और आकर्षण का माध्यम है। बाज़ारवाद के इस दौर में उपभोगवादी संस्कृति का उद्‌भव और प्रचार यहाँ बहुत ज़ोरों से हो रही है। आज हम उपभोगवादी संस्कृति में जी रहे हैं। इस संस्कृति ने व्यक्ति और समाज को अपने चंगुल में फंसा रखा है। इसने भारतीय संस्कृति को निगल लिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति के मानसिक, पारिवारिक, भाषाई, खान-पान, रहन-सहन, सोच-विचार, कामकाज़ आदि पर भीषण प्रभाव डाला है। जो भी संस्कृति हो लोग उसके अच्छाईयों को स्वीकार किए बिना बुराईयों को अधिक महत्व देते हैं। लोगों ने अपने आँखों पर चकाचौन्ध और मिथ्या की चश्मे डाल रखे हैं। आधुनिकता के गलत रास्तों पर चलते हुए लोग भूलभुलैया में फंसे हुए हैं। आज की भूमंडलीय संस्कृति के ऊपर 'अमेरिकन अंब्रेला' तना हुआ है।

2.7.2.5 भारतीय मानसिकता

पूँजीवादी व्यवस्था ने जिस उपभोगवादी संस्कृति को जन्म दिया है उससे हम भारतीयों में बहुत कुछ परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इसके प्रभाव ने हमारे दिलों-दिमाग को

अचरज में डाल दिया है। हम जिस परम्परा और जीवन रीति का पालन करते आ रहे हैं, आज हम उस रास्ते से कुछ हट चुके हैं। भारत वासियों की वर्तमान मानसिकता दूषित है। बाज़ारवाद ने यहाँ के हर चीज़ें को बिकाऊ वस्तु बना दिया है। हमारी ज़मीन, मेहनत, आशा, शान, आत्माभिमान, पारिवारिक रिश्ता आदि में परिवर्तन देखा जा सकता है। अधिकतर लोग सभी रिश्तों को दौलत और फायदे की नज़र से देखते हैं। माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी, सन्तान आदि रिश्तों में पाश्चात्य संस्कृति की कुछ कीचड घुलेमिल गये हैं। सब लोग धन कमाने के चक्कर में आपसी संबन्धों को बनाए रखने में असमर्थ होते जा रहे हैं। आज जब हर कहीं पैसा बोलता है तो उस पैसे के पीछे दौडते-दौडते हम मनुष्य यह भूल गये हैं कि पैसे से भी कुछ खुशियाँ खरीदा नहीं जा सकता। मीडिया के ज़रिए हमने अपने ज्ञान और विचारों की खिडकी खोल दी है। इसके ज़रिए कई चीज़ें हमारे दिलों-दिमाग में घर बनाते हैं। वर्तमान समय यूस एण्ड त्रो का ज़माना है। और यही भावना हमारी मानसिकता में भी देखा जाता है। it's ok, no problem, every thing is ok, be cool यही है आज की मानसिकता। इस मानसिक भाव ने युवा पीढ़ी या नई पीढ़ी पर गहरा असर छोडा है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, स्त्री-पुरुष के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच होने वाले मानसिक व्यवहार ने छद्मवेशी रूप ग्रहण किया है। स्त्री-पुरुष संबंध तथा यौन संबंधों को लेकर कई आशंकाएँ उत्पन्न हुई है। स्त्री-पुरुष मानसिकता में पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा बहुत अंतर आया है। इस तरह बदलते युग में बदलती मानसिकता के साथ भारतीय जनता भूमंडलीकृत समाज में दम घुट कर जी रहे हैं। भारतीय समाज पारिवारिक मूल्य-व्यवस्था में सहयोगात्मक व उदारवादी दृष्टिकोण रखता है। *वसुधैव कुटुम्बकम्* की संकल्पना भारत की अपनी विशेषता है। लेकिन भूमण्डलीकरण के संदर्भ में भारतीय सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्य का ह्रास हो गया है।

भारतीय युवकों की बदलती मानसिकता उसके वैवाहिक जीवन को भी प्रभावित किया है। "संचार माध्यमों, मनोरंजन के साधनों, भड़काव विज्ञापनों , फैशन सप्ताओं, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं आदि उपक्रमों ने आज की पीढ़ी के मन-मस्तिष्क में सौन्दर्य की फूहड़ तस्वीर अंकित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। इसके चलते शालीन, संस्कारी और सलज्ज पत्नियाँ युवकों को नहीं सुहा रही हैं। कितनी पत्नियाँ पतियों की नापसन्द इसलिये भी हो जाती हैं, क्योंकि वे उनकी पसंदीदा अभिनेत्री या मॉडल का -सा व्यवहार उनके सामने नहीं कर पाती हैं। विदेशों में जाकर बस रहे नव-विवाहित भारतीय युवकों के लिए यह आम बात हो गयी है। नवीन सौन्दर्य बोध की खातिर प्रवासी भारतीय अपनी भारतीय जीवन-संगिनी को असुन्दर घोषित करके उसका मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न करते हैं।"[22]

2.7.3 भूमंडलीकरण में स्त्री, पुरुष

हमारा समाज सदैव पुरुष सत्ता पर केन्द्रित है। सामाजिक न्याय और नियम निर्माण पुरुष के विचारों के आधार पर किया जाता था। इस परिप्रेक्ष्य में हमारे समाज में स्त्री-पुरुष की संकल्पना में भी बहुत अधिक अलगाव देख सकते हैं। स्त्री और पुरुष के कर्म, विचार और स्वतंत्रता आदि पर अलिखित नियम प्राप्त है। उस समय के दार्शनिकों और चिन्तकों ने भी स्त्री को पुरुष के अधीन रखना चाहा। महान दार्शनिक अरस्तु ने नारी के प्रति अपना विचार इस प्रकार बताया कि- 'स्त्री को पुरुष के अधीन ही रहना चाहिए।' प्लेटो ने भी स्त्री को केवल बच्चों की माँ बनने तक ही सीमित किया —'स्त्री तो केवल बच्चे पैदा करने के लिए रखी जाती है।'इस प्रकार वे स्त्रीयों को घर के चार

---

22 प्रो.सुरेश चन्द्र :- वर्तमानकालीन प्रवासी हिन्दी कहानी में भूमण्डलीकरण प्रेरित नारी - उत्पीड़न, पंचशील शोद्धसमीक्षा, पृ.सं.34

दीवारों तक ही सीमित रखा। मनुस्मृति में भी स्त्री की स्वतंत्रता का निर्णय इस प्रकार की है- 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हती।'

आधुनिकता के साथ -साथ स्त्रियों की दशा में कुछ प्रगति आने लगी। कुछ प्रतिशत स्त्रियाँ तो शिक्षा अर्जित कर घर के चार दीवारों से बाहर आकर समाज में अपना एक अलग व्यक्तित्व बनाई। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ स्त्रियों के मानसिक भाव में भी बदलाव आया। समाज में स्त्रीयों की स्वतंत्रता और संरक्षण के लिए वे जागरूक हुई। स्त्रीवादी आन्दोलन के फलस्वरूप स्त्रीयों की दशा और दिशा में परिवर्तन होने लगी। अधिकतर स्त्रीयाँ घर से बाहर आकर, पुरुष के साथ कंधे से कंधे मिलाकर काम करने लगी। इतना ही नहीं वह नौकरी की तलाश में विदेशों में भी जाने को तैयार हुई। आज सरकारी क्षेत्रों में जिस गति से स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है उससे कहीं ज्यादा निजी क्षेत्रो में बढ़ रही है। लेकिन यह बात सोचने की है कि स्त्री इतना कुछ करने पर भी या समाज में उसकी स्थिति नौकरी के बाद भी परंपरागत रूप जैसा ही है। उसे अब भी घर और बाहर दोनों देखना पड़ता है। इस तरह देश की आर्थिक व्यवस्था और जी.डी.पी में स्त्रीयों की महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है। सूचना क्रान्ति, सईबर स्पेस या विज्ञान ने जिस तकनीक को जन्म दिया उस माध्यम ने स्त्री मुक्ति का एक ऐसा नेटवर्क तैयार किया जिसमें स्त्री को बंधन, सीमा के परे जाने की संभावना बनी। भूमण्डलीकरण के माध्यम से तकनीक ने जिस प्रकार से विस्तार किया उसका समाजिक और आर्थिक लाभ खुद स्त्री को ही मिला। इतना सभी होने पर भी भूमण्डलीकरण के इस युग में भी स्त्री को पहले की तरह एक उपभोग वस्तु के रूप में देखा जा रहा है। स्त्री एक बिकाऊ चीज़ बन गया है। 'दी सेकन्ड सेक्स' की लेखिका सीमोन दी बोउवार ने कहा है कि "स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता

है।"[23]भूमंडलीकरण औरत की छवि में प्रदर्शन के तरीके से नयापन लाया न कि उसके व्यक्तित्व के आन्तरिक विकास और न ही पुरुषवादी मानसिक संरचना में बदलाव लाया। भूमंडलीकरण में स्त्री को स्त्री बनाने की प्रक्रिया तेज़ हुई है। ऐश्वर्या राय, रितु बेरी, सुनीता नारायण, मेधा पाटकर, किरण मजूमदार साह, वन्दना शिवा आदि ऐसा कई नाम हैं जिन्होंने भूमण्डलीकरण के सहयोग से और कुछ भूमंडलीकरण के पक्ष में हो या विपक्ष में। दोनों ही स्थितियाँ स्त्री की जीत की ओर बढ़ रही है।

विश्व के चाहे कोई भी देश हो स्त्रीयों के प्रति पुरुषों की मानसिकता में कोई भेदभाव नहीं है। भूमण्डलीकरण को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाएँ तो आज स्त्रीयों केलिए प्रगति का कई वातायन खुला है। लेकिन इन वातायनों से निकलते वक्त उसे कई समस्याओं का भी सामना करना पडता है। जैसे कि हमें मालूम है कि भूमण्डलीकरण के इस दौर में बाज़ार का प्रमुख स्थान है। और यह बाज़ार अपने उत्पादनों को बेचने केलिए स्त्रीयों का ही उपयोग करते हैं। स्त्री उसके लिए विज्ञापन का साधन है। स्त्री उसके लिए उत्पादन का सस्ता कामगार है। उपभोक्ताओं की श्रेणी में स्त्री प्रमुख है। इस तरह बाज़ार स्त्री का इस्तेमाल हर दृष्टि और अवसर पर करता है। बाज़ार को विस्तार करने के लिए पूँजीवादी देशों ने कई प्रकार की रणनीतियाँ तैयार की जिसमें से सबसे बड़ा बाज़ार सौन्दर्य प्रसाधनों से जुड़ा हुआ है। स्त्री सौन्दर्य का नया मानदण्ड बाज़ार ने बनाया है। और इसके आधार पर सुन्दर स्त्रीयों को हर क्षेत्र में आसानी से सफलता हासिल करती है। साथ ही यह ध्यान देने की बात है कि आज स्त्री भी बाज़ार से मुनाफा कमा रही है। स्त्री अपने सौन्दर्य के बल पर आर्थिक ताकत पा रही है।

आज स्त्री किसी से कम नहीं है। वह आसमान छू रही है। वह मोर्डन बन रही है। उसके हाथों में बरतन और छुरी नहीं है। वर्तमान संदर्भ में स्त्री केवल सौन्दर्य की पुतली

---

23 कुमार भास्कर :- भूमण्डलीकरण और स्त्री , संजय प्रकाशन 2008

नहीं रह गयी है। वह मीडिया, राजनीति, फिल्मों, दफ्तरों आदि के माध्यम से अपने आप को शरीक कर रही है। समाज में वह एक रोल मोडल बन गयी है। सरोजनी नायडु, कैप्टन लक्ष्मी, इंदिरा गान्धी, मदर तेरेसा, एम.एस. सुब्बलक्ष्मी, पी.टी. उषा, कल्पना चौवला आदि कई महिलाएँ अपने व्यक्तिव और प्रवृत्तियों से समाज में रोल मोडल बनी थी। लेकिन आज पूँजीवादी उत्पादनों के ब्रोन्डअंबासिटरों को समाज ने रोल मोडल बनाया है। भारत की युवा लडकियाँ एवं स्त्रीयाँ विज्ञापन में प्रस्तुत किए गए सिनेमा स्टार्स, स्पोर्टस स्टार्स आदि का नकल करते हुए आधुनिक जीवन जीती हैं।

भूमण्डलीकरण ने स्त्री संक्लपना में कुछ परिवर्तन लाया है। जैसे – 'भूमण्डलीकरण ने परंपरावादी और कट्टरपंथी विचारधारा के लोगों को 'पवर वुमन' के नाम पर हिला तो ज़रूर दिया परंतु दूसरी ओर उसकी 'पवर' और आज़ादी के नाम पर स्त्री को बाज़ार की बिकाऊ वस्तु के रूप में और भी ज्यादा व्यावसायिक रूप में बदल दिया है।"[24]वर्तमान संदर्भ में स्त्रीयों पर यौन अत्याचार बढ रही है। यौन अत्याचारों के बढने का कारण भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद ही है। "स्त्री का शरीर अब ग्लोबल वेश्यावृत्ति और बलात्कार के लिए ज्यादा आसान हो गया है। पर्यटन, शादी, नौकरी आदि न जाने किन-किन तरीकों से छलावा देकर यौन खिलौने के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। उसकी मासूमियत परतंत्रता गरीबी के बहाने बाज़ार में उसे एक वस्तु की तरह रख दिया जाता है। जहाँ उसके शरीर का मोल भी स्त्री खुद तय नहीं कर सकती और न ही मूल्य का उचित लाभ उसे मिलता है।"[25]

भूमण्डलीकरण के इस दौर में सेक्स को अधिक महत्व दिया जा रहा है। विज्ञापन एवं मिडिया में सेक्स को खुले आम दिखाया जाता है। भारत जैसे देश जहाँ वात्स्यायन ने

---

24 कुमार भास्कर :- भूमण्डलीकरण और स्त्री, संजय प्रकाशन 2008 पृ.सं 10

25 वहीं, पृ.सं.11

कामसूत्र की रचना की, यहाँ स्त्री-पुरुष संबन्ध और सेक्स को चार दीवारी एवं निजी रहा है। लेकिन भूमण्डलीकृत बाज़ार ने सेक्स से परदा उठा दिया। इससे लोगों में सेक्स की गलत रीतियाँ फैल गयी है। पाश्चात्य सेक्स बाजार ने भारतीय पुरुषों की मानसिकता में सेक्स संबन्धित विकृतियाँ पैदा की है। इसका जीवित उदाहरण आज हम समाज में देख रहे हैं। सेक्स के नाम पर न जाने कितनी छोटी-छोटी बच्चियाँ अपने खेलने-कूदने की उम्र में पुरुषों की काम-वासना की मानसिक विकृति के कारण यौनाचार का शिकार हो रही हैं।

समाज में भूमण्डलीकरण का आतंक बहुआयामी है। पूरा विश्व एक विलेज के रूप में सिमट रहा है तो हर एक देश का एक दूसरे के निकट आना स्वाभाविक है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देश अमरीका जैसे देशों को अपना रॉल मॉडल मानते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में ये पश्चिमी देश ही सबसे ज्यादा विकसित और आधुनिक हैं। भूमंडलीकरण में अर्थ व्यावस्था के साथ-साथ संस्कृति, सभ्यता, विचार, चिंता आदि सभी का भूमण्डलीकरण है, यानी व्यक्ति के अन्तर्जगत का भूमडंलीकरण है।

भारत केलिए भूमंडलीकरण का अर्थ है 'गुलामी का एक नया मंत्र'। एक ऐसे नए मंत्र का पाठ जो आर्थिक तर्क के नाम पर नवउदारवादी अंधविश्वास का बीज बो रहा है। नवउदारवाद में तीन तरह की नीतियाँ सक्रिय रहती है- निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण की नीतियाँ। इस त्रिधारा को ही नवउदारवाद का आधार माना जाता है। ऊपर से लगता है कि भूमंडलीकरण मानव-कल्याण, मानव-मंगल केलिए जन्मा है। किन्तु इसके भीतरी तह में पूँजीवादी प्रतिष्ठानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफाखोर जाल बिछे दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष : वैश्वीकरण वस्तुतः एक आर्थिक प्रक्रिया है। एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण देशों के बीच श्रम, पूँजी, माल तथा ज्ञान एवं तकनीक के निर्बाध प्रवाह पर

जोर देती है। इसकी आधारभूत मान्यता है कि आर्थिक गतिविधियाँ स्वतंत्र बाजार द्वारा संचालित की जाएँ। इसका यह आशय नहीं है कि वैश्वीकरण राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया नहीं है। तात्पर्य केवल इतना है कि राजनैतिक तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया होते हुए भी वैश्वीकरण मूल रूप से एक आर्थिक प्रक्रिया है। इस आर्थिक प्रक्रिया को मज़बूत रखने केलिए तकनीकी और सूचना क्रान्ति का अत्यधिक प्रचार-प्रसार होने लगा। तकनीकी और सूचना क्रान्ति विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' या 'विश्वग्राम' में बदल दिया। इस विश्वग्राम की अवधारणा का मूल स्वर भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। ऋग्वेद में ऐसा कहा गया है कि 'विश्व पुष्टं ग्रामे अस्मिन अनातुरम्'। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भी 'विश्वग्राम' की संकल्पना पर अधिक बल देते थे। ग्राम स्वराज्य की बात करते वक्त उन्होंने कहा 'भारत की आत्मा गाँवों में बसती है'। गाँधीजी ने ऐसा भी कहा था 'मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर के दीवारों से घिरा रहे, न मैं अपनी खिडकियों को कस कर बंद रखना चाहता हूँ। मैं तो सभी देशों की संस्कृति का संचार अपने घर में बेरोकटोक चाहता हूँ, पर ऐसी संस्कृति के किसी झकोरे से मेरे पाँव उखड जाएँ, यह मुझे मंजूर नहीं।' भूमण्डलीकरण काइस डरावने माहौल में महात्मागाँधी का यह कथन सोचने लायक है।

अतः हम ऐसे कह सकते हैं कि भूमण्डलीकरण ने समाज पर बुरा असर डाला है। इस आर्थिक प्रक्रिया ने समाज पर कई दुष्परिणाम छोडे हैं। भूमण्डलीकरण के इन घातक दुष्परिणामों की सूची बहुत विस्तृत है। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं- "भोग की अपरिपक्व प्रतिस्पर्धा, उपलब्धि की व्यग्र भूख, वैश्विक सौन्दर्य के नाम पर अश्लीलता का प्रदर्शन, पारिवारिक पवित्र रिश्तों के प्रति लापरवाही, बाह्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को बढ़ावा, देशी (जातीय) संस्कृति का विलुप्तीकरण, अजनबीपनजन्य संत्रास, अकेलापनजन्य असुरक्षा की भावना, व्यक्ति का विदेशीकरण, अविकसित समाजों के

लोगों में हीनताबोध का विकास, अमानवीय कार्यालयी संस्कृति का विकास, संवेदनानाशक मशीनों का प्रभुत्व, सूचना – क्रान्ति का दुरुपयोग, काम विषयक अनैतिक अवधारणाओं का विकास।"[26] वर्तमान संदर्भ में भारतीय समाज इन दुष्परिणामें के जाल में फंसे हुए है।

[26] प्रो.सुरेश चंद :- वर्तमानकालीन प्रवासी हिंदी कहानी में भूमण्डलीकरण प्रेरित नारी उत्पीडन, पंचशील शोध समीक्षा, पृ. 28

अध्याय 3

पत्रिका साहित्य (2001 से 2010 तक) कहानी और कहानीकार

कहानी जीवन की ऐसी प्रभावपूर्ण झलक है जो किसी एक के मार्मिक भाव या विचार के उद्‌घाटन द्वारा अपनी संपूर्ण एकात्मकता में पाठक को चमत्कृत कर देती है। आधुनिक कहानी साहित्य का विकास एवं प्रसार पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ हुआ, फिर कहानी ने जल्दी से ही पत्रिकाओं में अपना एक अलग स्थान बनाया। सीमित पृष्ठों के भीतर कम समय में पूर्ण होनेवाली कहानी की लोकप्रियता एवं बाज़ार की मांग को देखकर ऐसी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होने लगी जो पूरी तरह कहानी को ही समर्पित थी। 'कहानी', 'नयी कहानी', 'सारिका' ऐसी ही पत्रिकाएँ थी। सामाजिक सदंर्भ से जुडकर परिवर्तन का कारगर माध्यम बनकर कहानी ने अपने समय और संवेदना को प्रतिबिंबित किया है। वर्तमान संदर्भ में कहानी यथार्थ के धरातल पर खडे होकर समाज का यथार्थ चित्र उजागर करती है।

3.1 आधुनिक हिंदी कहानी, अब तक- एक संक्षिप्त परिचय

प्रारंभ में कहानी अपनी मौखिक परंपरा में कुतूहल सृष्टि करती हुई बढती रहती थी, लेकिन उसमें किन्हीं कलात्मक गुणों की ओर लेखक का ध्यान नहीं रहता था, जैसे सदलमिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान', इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतनी की कहानी' आदि। ऐसा माना जाता है कि 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन (1900) से ही हिंदी कहानी का विकास हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमति', 'गुलबहार', भगवानदास की 'प्लेग की चुडैल', बंगमहिला की 'दुलाईवाली', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का

समय' आदि कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित थी। आधुनिक हिंदी कहानी का विकास उपर्युक्त कहानियों के साथ हुआ, लेकिन कहानी का वास्तविक विकास जयशंकर प्रसाद एवं प्रेमचदं के युग में हुआ। इस युग के बाद कहानी में जो विविधता आयी वह मनोवैज्ञानिक कहानी (अज्ञेय, जैनेन्द्र), प्रगतिवादी कहानी (यशपाल, रांगेय राघव) आदि नाम से रेखांकित किया गया।

3.2 **स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी**

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी कहानी के क्षेत्र में नये-नये आन्दोलन का प्रवर्तन शुरू हुआ। निराशा, घुटन, क्षणवाद, जीवन के प्रति वितृष्णा एवं मनुष्य के परिवर्तित होते जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास विस्तृत फलक पर संभव हुआ। वस्तुतः हिंदी कहानी में रूपात्मक वैविध्य स्वातंत्र्योत्तर काल में बहुत अधिक आया। कहानी के रूप को लेकर जितने प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ उतना पहले कभी नहीं किये गए। इस युग से लेकर आज तक की हिंदी कहानी की विषय वस्तु मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबन्ध पर आधारित थी।

कहानी के जिस परंपरागत रूप को तोडने का प्रारंभ जैनेन्द्र ने किया था, नई कहानी (मोहनराकेश, राजेन्द्र यादव), आंचलिक कहानी (फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय) के प्रवर्तक इसे आगे बढाया। साठोत्तर पीढी के कहानीकारों ने इसे इतना आगे बढा दिया कि उस समय सचेतन कहानी (महीप सिंह), सहज कहानी (अमृतराय), सक्रिय कहानी (राकेश वत्स), समान्तर कहानी (कमलेश्वर), अकहानी (निर्मल वर्मा), समकालीन कहानी (गंगाप्रसाद विमल) आदि कई आन्दोलनों से हिंदी कहानी पल्लवित होने लगी। ये आन्दोलन इस बात का प्रमाण था कि नयी पीढी के कहानीकार अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हैं।

फलस्वरूप साठोत्तरी हिंदी कहानी अपने विषय वैविध्य के कारण पुरानी कहानियों से बहुत आगे बढी हुई है। उस समय की कहानी आर्थिक विषमता, परिवर्तित जीवनमूल्यों, पीढीगत अन्तराल, निराशा एवं संत्रास के साथ महानगरीय जिंदगी से उत्पन्न तनाव एवं अकेलेपन को भी व्यक्त करती है। सांप्रदायिकता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, राजनीतिक गिरावट को साठोत्तरीकहानियों में बखूबी चित्रित किया है। साठोत्तरीकहानी में संबन्धों के बदलाव को जाना जा सकता है। ये संबन्ध भी नयी कहानी से बहुत आगे बढ गये हैं। बढते औद्योगीकरण और अन्य अनेकोन्मुखी संकटों ने साठोत्तरी कहानी की धार को व्यापक बनाया है।स्वयं प्रकाश, अज़गर वजाहत, पंकज बिष्ट, उदयप्रकाश, संजीव आदि के साथ साथ चित्रामुद्गल, ममता कालिया, नासिरा शर्मा का नाम भी समकालीन कहानीकारों में उल्लेखनीय है। इसप्रकार हिंदी कहानी ने अपने इतिहास में एक लम्बी परंपरा बनायी है।

3.3.1 समसामयिक हिंदी कहानी और भूमण्डलीकरण

वैश्वीकरण के कारण समाज में जो क्रान्ति आई हैं उसका प्रभाव साहित्य पर भी परिलक्षित होना स्वाभाविक है। क्योंकि साहित्य मानव जीवन से जुडा है। 1989 के बाद शुरू हुई आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं ने देशीय ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक नई आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को सामने लाया। वैश्वीकरण ने हमारे जीवन शैली को जिस रफ्तार से बदल दिया है उसका सही अंकन साहित्य के भिन्न-भिन्न विधाओं में पाया जाता है। भूमण्डलीकरण ने पूँजी केन्द्रित एक नवीन संस्कृति को हमारे सामने लाया और उस पूँजी केन्द्रित भूमण्डलीकृत संस्कृति को हम शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। जीवन से संबन्धित होने के कारण उस परिवर्तित संस्कृति का सच्चा चित्रण साहित्य में परिलक्षित होता है।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा भूमण्डलीकरण से जुडी समस्याओं का चित्र कहानी में बडी मात्रा में मिलता है। समान परिस्थितियों में जीनेवाले आज के कहानीकार अपनी कहानियों में आज की विडंबनाओं एवं विकराल समस्याओं को अपना विषय बनाया है। अर्थात् भूमण्डलीकरण के दौर में जिस तेजी के साथ विश्व में परिस्थितियाँ बदलती जा रही है,इस बदलाव को आज के कहानीकारों ने अपने कलम का विषय बनाया। आज की कहानी का परिवेश बाजार व पूँजीवाद के बीच की एकता व अंतर्विरोध से निर्मित होता है। जीवन के जितने भी नये क्षेत्र विकसित हो रहे हैं, चाहे वह कंपनी की नौकरियाँ हो, कॉलसेंटर हो, मीडिया या मॉडिलिंग हो, सभी पर इन अंतर्विरोधों की गहरी छाप नजर आती है। आज की कहानी मानवीय मूल्यों की पैरवी पहले की तरह कर रही है, पर ऐसा लगता है कि जिन परिस्थितियों ने मूल्यों को नष्ट कर दिया है, वे मूल्यों से अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। आज यानीइक्कीसवीं सदी में हमारी पुरानी परंपराएँ, आस्थाएँ और मान्यताएँ धूमिल हो रही है और उसके स्थान पर एक नये प्रकार की भूमण्डलीय संस्कृति पनपने लगी है। इस नयी संस्कृति से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को उजागर करने में आज के कहानीकार सफल हुए हैं।

3.3.2 समसामयिक हिंदी कहानी एवं पत्रिका साहित्य

यह बात निर्विवाद है कि कहानी का प्रकाशन सबसे पहले पत्रिका द्वारा होता है। पत्र-पत्रिकाएँ कहानी के विकास में महत्वपूर्ण कार्य करती है। साथ ही साथ नये कहानीकारों का पहला कदम भी पत्रिकाओं से ही होता है। पत्रिकाएँ भी नवोदित, नवांकुर, नवान्न, पहला कदम जैसी संज्ञा देकर उनका परिचय भी कराती है। समसामयिक कहानियों का विमोचन सर्वप्रथम साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा होने के कारण साहित्य जगत में पत्रिका का महत्वपूर्ण स्थान है। समसामयिक साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों के अध्ययन से हमें आज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक तथा बैद्धिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सच्चा चित्र मिलता है।

अतः समसामयिक साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का अध्ययन समीचीन लगता है। अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियों में जो विकास हुआ है उसभी भी झलक पत्रिकाओं में ही पहले आती है जैसे 'दलित विमर्श' पर आधारित पत्रिका *दलित दस्तक*। बदलते साहित्यिक चिन्तन की प्रक्रियाओं का भी चित्र समसामयिक कहानियों में देखा जा सकता है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, परिस्थिति, आदिवासी, बाजारीकरण आदि विषयों पर समसामयिक कहानी अपनी कथावस्तु बनाती है।

आज हिंदी में अनगिनत पत्रिकाएँ है और उन सभी में बहुत सारी कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। चाहे मासिक हो, द्वैमासिक या त्रैमासिक हो सभी में कहानियाँ देखा जा सकती है। अधिकतर मासिक पत्रिकाओं में हिंदी की मौलिक कहानी ज्यादा है साथ ही साथ कुछेक अनूदित कहानियाँ भी प्रकाशित हैं। अध्ययन की सुविधा केलिए पत्रिकाओं की संख्या सीमित किया गया है। 'हंस', 'कथादेश', 'नया ज्ञानोदय', 'साहित्य अमृत', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'भाषा', 'साक्षात्कार', 'वागर्थ', 'अक्षरपर्व' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी कहानियों को ही चुना है।

3.4 चुनी हुई पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय

3.4.1 हंस

'जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक' के रूप में ख्याति प्राप्त हंस पत्रिका हिंदी साहित्य जगत केलिए एक अमूल्य निधि है। हिंदी साहित्य जगत के कहानीसम्राट तथा हंस का संस्थापक मुंशी प्रेमचंद के संपादकत्व से 1936 में शुरू हुई यह पत्रिका हिंदी के जाने-माने कहानीकार राजेन्द्रयादव के अक्षीण परिश्रम के फलस्वरूप एक लम्बे अर्से के बाद 1986 में पुनः प्रकाशित होने लगी। लब्ध प्रतिष्ठित कहानी मासिक पत्रिका के रूप में हंस का स्थान सर्वोपरि है। समसामयिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को, समकालीन

सामाजिक समस्याओं को उजागर करने में हंस सदैव जागृत होती है। स्त्री और दलित विमर्श को हिंदी कथा साहित्य के केन्द्र में लाने का प्रयास भी हंस ने किया है। श्री राजेन्द्र यादव के निधन के बाद हंस का वर्तमान संपादक संजय सहाय है।

3.4.2 कथादेश

हंस के समान कहानी जगत केलिए चिरपरिचित एवं नामी प्राप्त और एक पत्रिका है 'कथादेश'। दिल्ली से निकलनेवाली यह पत्रिका 'साहित्य, संस्कृति और कला का समग्र मासिक' पत्रिका के नाम से 1981 में प्रकाशित हुई थी। हरिनारायण के संपादकत्व में से प्रकाशित 'कथादेश' में छपी कहानियाँ वर्तमान ज़िन्दगी की गतिविधियों की ओर इशारा करती है।

3.4.3 नया ज्ञानोदय

साहित्यिक पत्रिका 'नया ज्ञानोदय' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा रवीन्द्र कालिया के संपादकत्व में दिल्ली से प्रकाशित हो रही है। 'आधुनिक भावबोध, कला संचेतना और नवीनता की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका' के रूप में अपना परिचय देनेवाली 'नया ज्ञानोदय' में वैश्वीकरण से उत्पन्न समाज की जटिल समस्याओं को लेकर लिखी गयी कहानियाँ बहुत अधिक हैं। 'ज्ञानोदय' पत्रिका का 2003 के बाद पुनर्नामांकन 'नया ज्ञानोदय' नाम से हुआ।

3.4.4 भाषा

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित द्वैमासिक पत्रिका है 'भाषा'। पत्रिका में हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं से अनूदित कहानियाँ भी प्रकाशित हो रही है। 1961 में

प्रकाशित 'भाषा' पत्रिका आज की हिंदी भाषा एवं साहित्य को विकसित करने में भरसक प्रयास कर रही है। भगवती प्रसाद निदारिया इसका संपादन कार्य कर रहा है।

3.4.5 वागर्थ

एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम खेमानी के संपादकत्व से निकलनेवाली साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका वागर्थ का प्रकाशन भारतीय भाषा परिषद कोलकत्ता से हो रही है। 1995 मे प्रकाशित 'वागर्थ' हिंदी के एक जाने-माने साहित्यिक पत्रिका है।

3.4.6 साहित्य अमृत

'साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक' के रूप में अपना परिचय देनेवाली मासिक पत्रिका 'साहित्य अमृत' का संस्थापक स्वर्गीय पंडित विद्यानिवास मिश्र थे। 1995 से शुरू हुई इस पत्रिका का वर्तमान संपादक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी हैं।

3.4.7 समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादमी की द्विमासिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का संपादक अरुण प्रकाश है। 1980 से शुरू हुई प्रस्तुत पत्रिका में 24 भाषाओं की भारतीय साहित्यिक रचनाओं का हिंदी में अनूदित करके प्रकाशित हो रही है। अनूदित कहानियों के साथ हिंदी की अपनी मौलिक कहानियाँ भी शामिल हैं।

3.4.8 साक्षात्कार

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद का मासिक पत्रिका साक्षात्कार 39 वर्ष पहले 1976 में प्रकाशित थी। उस समय पत्रिका का संपादक रचनाकार शानी थे। साक्षात्कार ने हिंदी के साथ भारतीय भाषाओं के साहित्य के विभिन्न अनुशासनों को स्थान दिया। वर्तमान संपादक हरि भटनागर है।

3.4.9अक्षरपर्व

1998 में प्रकाशित 'साहित्य-वैचारिक मासिक' अक्षरपर्व का मुख्यालय छत्तीसगढ़ है। कम समय के अन्दर खूब ख्याति प्राप्त प्रस्तु पत्रिका का संपादक 'सर्वमित्रा सुरजन' है।

3.4.10 अन्य पत्रिकाएँ

वर्तमान साहित्य, पहल, अभिव्यक्ति.कोम आदि पत्रिकाओं में भी भूमण्डलीकरण से उपजी कहानियाँ मिलती हैं।

उपर्युक्त पत्रिकाओं में वैश्वीकरण की विविधतोन्मुखी समस्याओं का चित्रण इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में बहुत अधिक पाया जाता है।

3.5 समसामयिक हिंदी कहानी एवं कहानीकार

ग्रामीण जीवन, नौकरी, पारिवारिक संबंध, स्त्री-पुरुष संबंध, दिखावटी ज़िदगी, वृद्ध समस्या, आर्थिक असंतुलन से पीडित घर-परिवार आदि वर्तमान ज़िदगी की विभिन्न स्थितियों एवं भूमण्डलीकरण की मनुष्यत्वहीन तथा अवैधानिक नीतियों के कारण संपूर्ण विश्व में जो खतरनाक स्थिति आई है, जिसका सजीव चित्रण पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों में हुआ है। प्रस्तुत कहानियों एवं कहानीकारों का सामान्य परिचय आगे दिये जा रहा है।

3.5.1 ग्रामीण जीवन का बदलता स्वरूप

भारत एक ऐसा देश है जहाँ कृषि को प्रमुख स्थान दिया जाता है। कृषि से जिन्दगी चलानेवाले ग्रामीण जनता को भूमण्डलीकरण का कराल हस्त परेशान कर रहा है। इन आम आदमी की कहानी लिखनेवाले कहानीकारों में एक नाम है कैलाश

बनवासी। छत्तीसगढ के जंगल, पहाडियों की धूल-माटी से बना यह व्यक्तित्व अपने आसपास की हारती हुई जिंदगी के रुदन को, तथा हावी होती ताकतों के कारण मजबूरी से पराजित, टूटते पात्रों के मन के तह तक पहूँचकर उसकी वेदना को शब्दों में बाँधने में सफल हुए हैं। उनकी कहानी है 'बाज़ार मे रामधन' (हंस)[1]। नई-पुरानी पीढी के संघर्ष के माध्यम से कृषि संस्कृति को बचाये रखने और नई पीढी की मानसिकता का परिचय देकर कृषि संस्कृति के भविष्य की ओर इशारा करती है। किसान की वर्तमान जिंदगी की दुरवस्था पर इशारा करनेवाली अन्य कहानियाँ हैंऊर्मिला शिरीष की 'कुर्की'(समकालीन भारतीय साहित्य)[2], 'रतनू कहाँ है' शिवनाथ शुक्ल (अक्षरपर्व)[3]आदि ।

एस.आर. हरनोट, श्यामकुमार पोकरा, पुन्नी सिंह, शिवमूर्ती, संजय खाती, चंद्रकिशोर जायसवाल, अरुण यादव आदि ऐसे कई कथाकार हैं जिन्होने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज के सच को सामने लाने का अथक प्रयास किया है। किसान के अलावा कुम्हार, लुहार, मोची, जुलाहा आदि परंपरागत कुटीर उद्योगों से अजीविका चलानेवाले लोग भी आज भूमण्डलीकरकण के कारण बेरोजगार बन गये हैं। बाजारीकरण के कारण हमारे परंपरागत कुटीर उद्योगों का तहस-नहस होने लगा। जाने-माने कथाकार एस.आर. हरनोट एक ऐसा कहानीकार हैं जिन्होने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज में हो रही बदलाव एवं उससे उत्पन्न समस्याओं को अतिसूक्ष्मता से चित्रित किया है। संस्कृति, इतिहास एवं जनजीवन से अगाध अध्ययन करनेवाले एस.आर. हरनोट को ग्रामीण परिवेश पर आधारित कहानी लिखनेवाले कहानीकार का नाम प्राप्त

---

1 हंस , अगस्त 2006

2 समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर 2006

3 अक्षरपर्व, जून 2009

है। 'माँ पढती है'(हंस)[4], मिट्टी के लोग(नया ज्ञानोदय)[5], 'चश्मदीद'(समकालीन भारतीय सहित्य)[6] आदि में ग्रामीण जिन्दगी का चित्र उभरा है।

'मिट्टी के लोग' कहानी में रामेशरी चाची के परिवार की वर्तमान जिंदगी की दयनीय स्थिति का वर्णन करके गाँव की दुरवस्था की ओर हमें ले जाता है। जैसे गाँव का एक कुम्हार अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ जहर पीकर आत्महत्या कर ली, क्योंकि मिट्टी से बने बर्तन आज कोई नहीं खरीदते है।

इसी प्रकार की एक कहानी है कविता की 'पत्थर, माटी, दूब'(हंस)[7]। इसमें मूर्तिकार गिरीश प्रजापति गरीबी एवं बीमारी से अपना दम तोडता है। उन दिनों त्योहारों या उत्सवों के समय में सांस लेने तक की फुर्सत न मिलती थी, लेकिन आज मिट्टी के खिलौनों की जगह प्लास्टिक के खिलौने बाज़ार में भरने लगे और कोई भी मिट्टी के खिलौने नहीं खरीदते हैं। घर में गरीबी अपनी डैने तेजी से पसारने लगी। माटी से लगन, आखिर गिरीश को माटी में ही मिलाया।

'जड-जमीन', 'दौड', 'सुंदर बाबा की कहानी'(हंस)[8]आदि भी ग्रामीण जिंदगी पर पर्दाफाश करती हैं। परंपरागत कुटीर उद्योगों के समान देशी उद्योगों का भी ह्रास हो रहा है। इससे भी कई लोग बेरोजगारी का शिकार बन गये है। संजय कुदन की 'कोई है'(हंस)[9], हीरालाल नागर की 'परछाई'(समकालीन भारतीय साहित्य)[10], राजेश जैन

---

4 हंस, अप्रैल 2002

5 नया ज्ञानोदय, मार्च 2009

6 समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2005

7 हंस, मई 2009

8 हंस, सितंबर 2009, मई 2009, सितंबर 2003

9 हंस , दिसंबर 2003

10 समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी 2003

की 'निद्राखोर'(हंस)[11], उषा राजा सक्सेना की 'मयंक'(साहित्य अमृत)[12] आदि ऐसी कहानियाँ हैं। बेरोजगारी की समस्या को लेकर लिखी गयी अन्य कहानियाँ हैं- 'अरसे बाद' (कथादेश)[13], 'सेल्समैन'(नया ज्ञानोदय)[14], 'न धूप न हवा'(नया ज्ञानोदय)[15], 'दि बिजनेस'(हंस)[16]आदि।

3.5.2 बेरोज़गारी, आर्थिक विषमताएँ

बेकारी की समस्या आज कई परिवारों को झगड लिया है। हिंदी के युवाकहानीकार नीरज वर्मा की कहानी 'पार्टनर'(हंस)[17] अपने पारिवारिक दायित्वों को निभाने केलिए अथक एवं अक्षीण परिश्रम करनेवाले एक युवा बिजनेस मैन की संघर्ष गाथा है। मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक समस्या को चित्रित करने वाली अन्य कहानी है- 'रोजनामचा'(हंस)[18]। नासिरा शर्मा, अमरीक सिंह दीप, जयनंदन, कविता, सुषमा मुनींद, कृष्णा अग्निहोत्री, दीपक शर्मा आदि कहानीकार पारिवारिक समस्या को लेकर लिखनेवाले हैं। पारिवारिक संबन्धों में आई शिथिलता एवं अनैतिकता पर लिखनेवाली कहानियाँ है 'देहदंश', 'ढाई आखर' (हंस)[19], 'रिश्तों के दायरे'(भाषा)[20], 'खुलती राहें'(साहित्य अमृत)[21], 'लावास्ता'(कथादेश)[22] आदि। हिंदी की वरिष्ठ लेखिका

---

11 हंस, जनवरी 2004
12 साहित्य अमृत, जनवरी 2005
13 कथादेश, फरवरी 2010
14 नया ज्ञानोदय, फरवरी 2007
15 नया ज्ञानोदय, फरवरी 2006
16 हंस, नवंबर, 2003
17 हंस, अक्तूबर, 2009
18 हंस, नवंबर, 2001
19 हंस, सितंबर 2006
20 भाषा, मई-जून 2010
21 साहित्य अमृत, अक्तूबर 2008

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियाँ मानवीय संबन्धों के बीहड अनुभव से संपन्न हैं। पारिवारिक संबन्धों या रिश्तों में आयी बिखराव की सूचना देनेवाली उनकी एक चर्चित कहानी है 'यह क्या जगह है दोस्तों'(हंस)। प्रस्तुत कहानी में रात-दिन कडी मेहनत करके अपने बच्चों को बिना कोई तकलीफ महसूस करके जीनेवाली एक माँ के साथ बच्चों का अनीतिपूर्ण एवं मूल्यविहीन व्यवहार का चित्र है। 'वानप्रस्थ'(साहित्य अर्मित), 'आखिरी पडाव का दुख'(सुभाष नीरव)(समकालीन भारतीय साहित्य), 'कोई है'(रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति) (भाषा), आदि इस तरह की कहानी है।

3.5.3 अकेलापन और वार्द्धक्य

पारिवारिक दरार के साथ-साथ अकेलापन एवं वृद्ध समस्या पर आधारित कहानियाँ भी पत्रिकाओं में प्राप्त हैं। उमेश अग्निहोत्री की 'परीक्षा'(हंस), साजिद रशीद की 'मौत केलिए एक अपील'(हंस), सुषमा मूनींद की 'गुनहगार'(हंस) और 'कोई मेरा अपना'(हंस), मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेतकामना'(हंस), सुरेन्द्र के पिता आदि में अकेलापन से पीडित वृद्धों की समस्या है। आदमी का विदेश जाने का मोह भी अकेलापन का एक कारण है। 'नाम गुमने की पीडा', 'घरौंदा'(हंस), 'अठारह साल का लडका', 'पुराना आदमी' आदि कहानियाँ इसकी ओर संकेत करती हैं।

3.5.4 महानगरीय जीवन, पारिवारिक अलगाव

बाजारीकरण के कारण आज पारिवारिक वातावरण असन्तोषजनक हो गया। इसकी ओर संकेत करनेवाली एक प्रसिद्ध कहानी है 'एक कोई और'। हिंदी के विख्यात एवं चर्चित कहानीकार अमरीक सिंह दीप की प्रस्तुत कहानी 'एक कोई और' का मुख्य

वषय यह है कि बाजार की चकांचौंध के पीछे दौडनेवाली पत्नी से तंग आकर घर से भागते नायक। जयनंदन की कहानी 'घर फूँक तमाशा'(ज्ञानभारती 2004), अंजु दुआ जैमिनी की 'कंक्रीट के फसल का हकदार'(हरिगंधा, अप्रैल 2008) आदि में भी घर के बदलते परिवेश का चित्रण करती है।

बिगडते तथा असन्तुलित परिवार ज्यादा से ज्यादा नगरों एवं महानगरों में ही देखा जाता है। महानगरों की यांत्रिक, स्वार्थपरक एवं व्यस्त जिन्दगी का चित्रण 'झंझट', 'दो घंटे', 'महानगर के किस्से', 'उस दुनिया की जाती सडक', 'बचपन का दोस्त' आदि कहानियों में मिलता है। नगरों एवं महानगरों में पनपी उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर लेखनी चलानेवाले हैं शर्मिला बोहरा जालान, मनीषा कुलश्रेष्ठ, संजय कुंदन, हरियश राय, मदन मोहन, नरेन्द्र प्रताप सिंह, गीताश्री, पंखूरी सिन्हा, नमिता सिंह, सुन्दर चन्द ठाकुर आदि। 'कार्न-सूप', 'स्वांग', 'ई-मेल', 'देह-दुकान', 'समानांतर रेखाओं का आकर्षण', आदि कहानियाँ उपभोगवादी संस्कृति से संबन्धित हैं। उपभोगवादी संस्कृति के अलाव नगरों में स्त्री-पुरुष संबन्ध शादी-ब्याह से हटकर 'लिविंग टुगेदर' की ओर बढ रही है। '15वी मंजिल का सफर', 'प्रदूषण', 'घर-परिवार', 'सबसे अच्छी लडकी', 'इस तरह से सबकुछ'(हंस), आदि लिविंग टुगेदर से संबन्धित कहानियाँ है।

3.5.5 नारी विमर्श और महिला लेखन

भूमण्डलीकरण के कारण एक ओर स्त्री को आजादी एवं आर्थिक ताकत मिली तो दूसरी ओर उनपर हो रही अमानवीयता एवं शोषण दिन-व-दिन बढ रही है। स्त्रीयों पर हो रहे यौन शोषण के बारे में अधिकतर महिला लेखिकाओं की कहानियाँ उपलब्ध हैं। सरिता शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, जयंती, संगीता आनन्द, लता शर्मा, नासिरा शर्मा, कविता, मधु कांकरिया, प्रीति श्रीवास्तव, गीताश्री, सुषमा बेदी, पंखूरी सिंहा का नाम

इसमें प्रमुख है। अपनी पहली कहानी से ही हिंदी कहानी जगत में चर्चित एवं एक अलग स्थान रखनेवाली सरिता शर्मा अपनी कहानी के माध्यम से बदले हुए परिवेश में भी हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को बचाये रखने का भरसक प्रयास करती हैं। उनकी कहानी 'वैक्यूम'(हंस, जूलाई 2009)इंटरनेट द्वारा हो रहे स्त्री शोषण की ओर इशारा करती है। कहानी में नौकरीपेशा युवती के प्रेमी इंटरनेट के ज़रिए अपनी सेक्स की संतुष्टी करना चाहता है, वह भी चैट और वेबकैम के माध्यम से। इंटरनेट के समान मोबाइल फोण भी शोषण का नया साधन है। प्रभात रंजन की 'मिस लिली'(नया ज्ञानोदय), नासिरा शर्मा की 'दूसरा ताजमहल'(हंस) आदि कहानियाँ इसका उदाहरण है। 'मिस लिली' में नायिका लिली और अरुण चौधरी का प्रणय मोबाइल के एस.एम.एस द्वारा होता है। अन्त में अरुण चौधरी रियालिटि शो का नाम बताकर लिली को यूरोप के बाजार में बिकता है, वहाँ लडकियों की बडी मांग थी। साथ ही साथ लिली के साथ की अश्लील सी.डी बेचकर खूब पैसा कमाता है।

स्त्री शोषण का नया क्षेत्र है मॉडलिंग की दुनिया। संगीता आनन्द की 'अब क्या होगा शैली'(हंस), सोहनशर्मा की 'वो आखिरी बार सेन्फ्रान्सिस्को में देखी गयी थी'(हंस), आर.के. पालीवाल की 'भगवान पायल को बचाये रखना'(हंस) आदि कहानियों में मॉडलिंग की दुनिया से भ्रमित होकर अपनी जिन्दगी को बरबाद करनेवाली लडकियों की कहानी है। 'परिमला तुम हार गयी' , 'जिन दिन देखे वे कुसुम', 'गैंगरेप'(हंस), 'चश्मदीद'(समकालीन भारतीय साहित्य) आदि कहानियाँ यौन शोषण से संबन्धित हैं।

भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप मिली स्वतंत्रता का उपयोग तथा फायदा स्त्रीयों ने भी उठाया। रश्मिकाव की 'वीक एंड', अभिषेक कश्यप की 'सबसे अच्छी

लडकी'(हंस), विजय की 'गिरगिट'(नया ज्ञानोदय), शशिभूषण द्विवेदी की 'मोना डार्लिंग और जार्जबुश'(नया ज्ञानोदय), 'पटाक्षेप'(हंस), 'इट्स माई लाइफ'(हंस) आदि में उन्मुक्त, निर्लज्ज और फूहड बाजारू संस्कृति की उपज नई पीढी की एक जीती जागती प्रतिछवि मिलती है।

इक्कीसवीं सदी की एक चर्चित कहानी है सोनी सिंह की 'अपना कमरा'(हंस)। इसमें सत्ता एवं स्वतंत्रता केलिए संघर्षरत आधुनिक सोचवाली एक लडकी की कहानी है। लडकी सरिता की सपना है अपनेलिए एक फ्लैट। दस वर्ष तक की अपनी इन्तजार के बाद वह एक फ्लैट खरीदती है और वहाँ चैन का सांसा लेती है। इस प्रकार स्त्री के स्वतंत्रता बोध को संबोधित करनेवाली कहानियाँ हैं – कविता की 'मेरे नाप के कपडे'(हंस), राजीव शर्मा की 'शैम्पैन'(वर्तमान साहित्य), अंजली काजल की 'मुझे ऐ जिन्दगी दीवाना कर दे'(हंस) आदि।

3.5.5 दलित विमर्श और पारिस्थितिक सजगता

दलित विमर्श पर केंद्रित कहानियों की रचना समसामयिक कहानियों की मुख्य प्रवृत्ति है। दलित विमर्श को केंद्र में रख कर लिखी गई कहानियों में प्रमुख है सूशीला ठाकभौरे की 'बदला'(हंस), सूरजपाल चौहान की 'जाती'(साहित्य अमृत), नीरजा माधव की 'टेपरा'(साहित्य अमृत))आदि।

पारिस्थितिक सजगता पर लिखी गई कहानियाँ भी उपलब्ध है। पारिस्थितिक सजगता की दृष्टि से चर्चित कहानियाँ है- 'पक्षि सुरक्षा वन'(संतोष साहिनि, हंस), 'कल्याण का अंत'(जयनंदन, नया ज्ञानोदय), 'गिद्ध'(नरेन्द्र नाग देव, कथादेश)आदि।

इन सबके अलावा राजनीति, भाषा, शिक्षा, नूतन तकनीकी, संस्कृति आदि क्षेत्रों पर केन्द्रित कहानियाँ की रचना भी हुई है।। 'सिटि पब्लिक स्कूल, वाराणसी' (चन्दन पाण्डेय, नया ज्ञानोदय), 'किस्सा-ए-कोहिनूर' (पंखूरी सिंहा, कथादेश), 'सवाल' (आरती झा, वागर्थ), 'चश्मा' (सुशांत सुप्रिया, भाषा), 'क्रोस रोड्स'(प्रताप सहगल, समकालीन भारतीय साहित्य), 'प्रेम की उपकथा' (दुष्यंत, कथदेश) आदिभाषा को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियाँ हैं। राजनीति पर आधारित कहानियाँ है'हमिंग बर्ड', 'धुंधलका', 'गॉडफादर' आदि। मीडिया से संबन्धित कहानियों की रचना भी इसी काल में हुई है जैसे'चौथा पाया', 'एक चिडिया की उडान', 'अगली बारिश तक', 'झूठ', 'पुष्पक विमान' आदि। धार्मिक समस्या पर केन्द्रित कहानियों के अंतर्गत 'फाइल', 'जो भी यह कथा पढेगा' आदि आति है। नवीन तकनीकी पर आधारित कहानियों की रचना भी इसी काल में हुई है जैसे'उपग्रह में', 'निद्राखोर', 'कोई मेरा अपना' आदि।

निष्कर्ष : इक्कीसवीं शताब्दी तक आते आते हिंदी भाषा एवं साहित्य जगत में प्रकाशित पत्रिकाओं की संख्या बढ़ गई है। इन पत्रिकाओं में युगानुसार होने वाली नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रतिपादित किया है। कथ्यात्मक दृष्टि से देखें तो पत्रिकाओं में प्रकाशित समसामायिक कहानियाँ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण करने में सफल हुई है।इनमें समाज के विभिन्न सतहों जैसे ग्रामीण जीवन, बाज़ार, बेरोज़गारी, पारिवारिक संबंध, महानगरीय जीवन, वृद्ध स्त्री, दलित, पर्यावरण आदि पर भूमंडलीकरण के विविधोन्मुखी प्रभावों को कहानीकारों ने रेखांकित किया है।

अध्याय 4

2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी कहानी : विश्लेषणात्मक अध्ययन - वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में

2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि उपर्युक्त अवधि के दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में जो अभूतपूर्व दिशा परिवर्तन हुआ है उसको प्रतिबिंबित करने का सफल प्रयास प्रस्तुत कहानियों में हुआ है। वैश्वीकरण से प्रभावित समाज की विभिन्न स्थितियों एवं परिवेशगत बदलाव के आधार पर पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का विश्लेषण आगे किया जा रहा है।

4.1) उपभोगवादी संस्कृति

आज अमेरिकी बाज़ार अपने सामाज और विज्ञापन के ज़रिए संपूर्ण विश्व को अपना उपनिवेश बना रहा है। वैश्वीकरण के इस नये सन्दर्भ में बाज़ार ने देश की आर्थिक नीति एवं सामाजिक परिदृश्य को बदल दिया। उपभोगवादी संस्कृति को फैलाते हुए अमेरिका जैसे विकसित देश भारत जैसे विकासशील देश की अर्थ व्यवस्था में हस्तक्षेप कर रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप देश, समाज और व्यक्ति की चारित्रिक विशेषता, सामाजिकता से हटकर उपभोगवादी संस्कृति की ओर जा रहे हैं। इस उपभोगवादी संस्कृति का फैलाव सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

भारत में हाट-बाज़ार परंपरा से रहे हैं, लेकिन वे घर से बाहर होते थे, हमारी आवश्यकताओं के अनुसार चलते थे, हमारी जरूरतों पर ध्यान देते थे। लेकिन आज बाज़ार हमारे घरों में घुस आया है; हमारे किचन में, हमारे ड्राईंगरूम में, बाथरूम में,

बेडरूम में तथा हमारी पूरी जेहनियत में। *अमरीकी सिंह दीप* की *'एक कोई ओर'*[1] इसकी ओर संकेत करनेवाली एक सशक्त कहानी है। इस कहानी का नायक *दीपू* घर से दूर भाग रहा है। वह किसी भी हालत में घर के चंगुल में दोबारा आना नहीं चाहता। कहानी में बाज़ारवाद तथा उपभोक्तावाद के फलस्वरूप घर में आये बदलाव को चित्रित किया है। *दीपू* स्वप्न में देखता है –" ड्राईंगरुम गला फाड-फाडकर चीख रहा था - मुझे सोफा चाहिए, रंगीन टेलीविशन चाहिए, ईरानी कालीन चाहिए, झूमर चाहिए, मार्डन पेंटिंग चाहिए, शानदार नए पर्दे चाहिए। बैडरूम का गुस्सा सातवें आसमान पर था - मुझे एसी चाहिए, मुझे नया म्यूजिक सिस्टम चाहिए, डनलपपिलो चाहिए, डनलप तकिए चाहिए, रेशमी चादरें चाहिए, शनील की रजाईयाँ चाहिए। रसोई की मुट्ठियां अलग तनी हुई थी - मुझे कुकिंग रेंज़ चाहिए, रोटी मेकर चाहिए, माइक्रोवेव कुकर चाहिए और वह सब कुछ चाहिए जो मेरे लिए एशियन स्काईशाप बेचती है। बाथरुम भी जिद पर था - मुझे इटालियन बाथटब चाहिए, गीजर चाहिए, शॉवर चाहिए, वाशिंग मशीन चाहिए, टर्की टावल्स चाहिए, विदेशी तेल-साबून और शैम्पू चाहिए, महंगा वाला यूटीक्लोन चाहिए, शानदार परफ्यूम चाहिए। अपनी मांगों को लेकर घर का कोई भी हिस्सा पीछे नहीं था। सब गला फाड-फाडकर चीख रहे थे - हमें टेलिफोन चाहिए, कार चाहिए, ड्राइवर चाहिए, माली चाहिए, नौकर चाहिए। हमें वह हर फाइव स्टार सुविधा चाहिए जो पूँजीपति नेता और फिल्मी हीरो-हीरोइन भोग रहे हैं।"[2] यह सब चीजें आज नवमध्यवर्ग की आन-बान-शान है। इतना ही नहीं इस उपभोक्तावादी संस्कृति की धुत से हमारे पारिवारिक वातावरण भी बिगड रहे हैं।

पति-पत्नी के बीच के रिश्तों में बाज़ार ने दरार पैदा किया है। कहानी में पत्नी दीपू से झगड़ा करती हुई कहती है –"मुझे डायमंड ज्वैलरी चाहिए, बनारसी और

---

1 अमरीक सिंह दीप :- एक कोई ओर, हंस, अगस्त 2001, पृ. 34.

2 वहीं, पृ. 36.

साउथसिल्क की साडियाँ चाहिए, लाबेला की सैंडिलें चाहिए, लेक्मे की धूरी मेकअप रेंज चाहिए, होटलिंग चाहिए, शॅपिंग चाहिए, पिकनिक चाहिए, आउटिंग चाहिए।"[3] वस्तुतः कथानायिका की ये जरूरतें बाज़ार द्वारा पैदा की गई है। इन जरूरतों की पूर्ति केलिए या समाज में परिवार की संपन्नता एवं गौरव को दिखाने केलिए 'होम लोन', 'कार लोन' आदि लेकर ऋणों के बोझ का गुलाम बन जाता है। आज 'आवश्यकता आविष्कार की जननी' के बदले 'आविष्कार आवश्यकता की जननी' बन गई है।

इस उपभोगवादी दौर में 'घर' का अर्थ भी बदल गया है। कहानीकार कहते हैं – "घर का कद वृक्षों से कहीं ज्यादा ऊँचा हो चुका है।"[4] आदमी रहने केलिए नहीं, 'स्टाटस' दिखाने केलिए ऊँचे-से-ऊँचे घर बनाते है और उसे बाज़ार से उपलब्ध सभी सामग्रियों से साज-संवारते हैं। प्रसिद्ध संस्कृत आचार्य जगन्नाथ पाठक ने कहा है –"जैसे-जैसे लोगों के मकान ऊँचे होते रहे हैं, वैसे वैसे लोग बौने होते जा रहे हैं।"[5] उपभोक्तावादी मानसिकता से ग्रसित मानव के मन से घर की अवधारणा मिटती जा रही है, लोग बड़े-बड़े फ्लैट या अपार्टमेंटों में रहने लगे हैं। विभा देवसरे की कहानी *'बगीचा'*[6] में महेश सक्सेना बेटों की जिद से अपनी कोठी को शॉपिंग मॉल में तब्दील करने को बेचता है। फिर वह बेटों के साथ फ्लेट में रहता है। कहानी में उसके घर का माली महेश सक्सेना से कहता है- "बाग-बगीचा तो सब उजडता जा रहा है। सारी ज़मीन

---

3 वहीं – पृ. 37

4 वहीं – पृ. 35

5 हर्षदेव माधव :- वैश्वीकरण और संस्कृत कविता, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-आगस्त 2011, पृ. 226.

6 विभा देवसरे :- बगीचा, साहित्य अमृत ,सितंबर 2004, पृ. 9.

बाज़ार हो गई हैं। सीमेंट का जंगल फैलता जा रहा है। बाग-बगीचे की वो हरियाली अब कहाँ, चारों ओर बाज़ार का शोरगुल है।"[7]

उसीतरह *विभारानी* की कहानी *'उसकी गिरफ्तारी से पूर्व'*[8] का नायक *प्रकाश* भोगवादी संस्कृति में जमे नौकरीशुदा आदमी है। अपनी मस्तभरी जिन्दगी काटने केलिए नौकरी के अलावा शेयर तथा म्यूचलफण्ड के एजेंट का काम भी करते थे। इसीसे उनके पास महँगी और आधुनिकतम गाड़ी है। वह हमेशा बड़े-बड़े ब्रान्ड के कपड़े पहनते हैं, कैंटीन का सबसे महँगा खाना खाता है, रोज़ एक-दो बार कोल्डड्रिंक लेता है साथियों को भी ऑफर करता है। पश्चिमी उपभोगवादी संस्कृति का अन्धानुकरण करते करते हम अपनी वेश-भूषा, खाने-पीने में भी परिवर्तन करने लगा जैसे *पंकज सुबीर* की कहानी *'सदी का महानायक उर्फ कूल कूल तेल का सेल्समेन'*[9]में युवा पीढी पर उपभोगवादी संस्कृति के प्रभाव पर चर्चा किया है। जैसे - कहानी के नायक से उसके मित्र पूछते हैं- " ये तुम्हारा मोबाइल तो पुराना मॉडल का है, इसे कब बदलोगे? पता है तेरे मोबाइल में तो दो एम.पी का कैमरा भी नहीं है।"[10] जब नायक 'मैं' अपनी प्रेमिका के साथ पार्क में बैठते हैं, तब *शिल्पा* (प्रेमिका) उससे पॉपकार्न और कोककोला ही मंगवाती है। मित्र *धोनी* उसके वेश-भूषा याने अंडरवियर तक को ताकता है और कहता है –" कच्छे में घूमना कोई शर्म की बात नहीं है, बस कच्छा ब्रैंडेड होना चाहिए। और अगर कच्छे में ना भी घूम पाओ तो कम से कम पैंट को इतना नीचे खिसकाकर पहनो कि तुम्हारी चड्डी का ब्रांड दिखाई दे। ये केवल चड्डी नहीं है, ये तुम्हारा स्टेटस है, समझे?"[11]

---

7 वहीं, पृ. 12.

8 विभारानी :- उसकी गिरफ्तरी से पूर्व, साक्षात्कार, मार्च 2008, पृ. 50

9 पंकज सुबीर :- सदी का महानायक उर्फ कूले कूले तेल का सेल्समेन –, हंस, दिसंबर 2010, पृ.20.

10 वहीं, पृ.20.

11 वहीं – पृ. 21.

उपभोगवादी संस्कृति का फैलाव शहरों या नगरों से होकर अब गाँवों में भी इसकी लहर उठ रही है। गाँव के हरेक घर में टी.वी, मोबाइल और साज-सिंगार का सामान आदि हैं। प्रचार माध्यमों के द्वारा गाँवों तक उपभोक्तावादी संस्कृति अपना हाथ फैला रहा है। *सुभाष चन्द्र कुशवाहा* की *'नून,तेल,मोबाइल'*[12] कहानी के पिता भगत कहते हैं –"टी वी देख-देखकर वइसे ही बहू-बेटियों का दिमाग खराब हो गया है। आँखें फाड-फाडकर देखती है हीरोइनों को। वइसे ही कपडे पहनना चाहती है। वइसे ही सिंगार-विंगार।"[13]

चित्रा मुद्गल की *'मामला आगे बढेगा अभी'*[14] कहानी में उच्चवर्ग की विलासिता पूर्ण जिन्दगी का चित्रण है। कहानी के साब को फैक्टरी जाने केलिए 'टयोटा' है और मेमसाब को बाहर जाने केलिए 'प्रीमियर पदमिनि' है। इतना ही नहीं साब एक नया फ्लैट खरीदता है और वहाँ उसकी प्रेमिका रहती है। उसकेलिए एक नयी गाडी भी खरीदा है.....। उच्चवर्ग के इसतरह की विलासितापूर्ण जिन्दगी का नकल मध्यवर्ग के लोग कर रहे हैं। मध्यवर्ग के इसी आसक्ति ने ही उपभोगवादी संस्कृति या बाज़ारू संस्कृति को पनपने में सहायक सिद्ध हुआ।

कथाकार विजय की *'गिरगिट'*[15] कहानी की नायिका मीना पैसा, शानदार घर, गाड़ी, नौकर, मस्ती आदि केलिए कोलकत्ता के एक होटल में कालगर्ल बनकर रहती है। वह कहती है –" मैं सडक पर पैदल घसीटना नहीं चाहती हूँ, इसलिए अपनाया है यह

---

12 सुभाष चन्द्र कुशवाहा :- नून तेल मोबाइल, हंस, सितंबर 2006, पृ. 22.

13 वहीं, पृ. 24.

14 चित्रा मुद्गल :- मामला आगे बढेगा अभी, साक्षात्कार, मार्च 2007, पृ. 25

15 विजय गिरगिट :- नया ज्ञानोदय, सितंबर 2008, पृ. 66.

जीवन।"[16] उसे प्यार से भी अधिक मूल्य चीज़ पैसा है। वह सूरज से कहती है- "प्यार एक एब्स्ट्रेक्ट सोच है डियर। जब तक देह है, प्यार है। मगर जीने केलिए शान से जीने केलिए प्यार से पहले रुपया चाहिए।"[17]'खाओ-पियो और ऐश करो' की जीवन पद्धति को अपनाने में आज की पीढ़ी गर्व महसूस करती है।

प्रभा खेतान के अनुसार " उपभोग एक प्रकार की आत्माभिव्यक्ति और आदमी की पहचान का माध्यम है जिससे भौतिक वस्तु के साथ अभौतिक की मिलावट के संदर्भ में उसका मूल्यांकन होता है।"[18]इसी वजह से आज बाज़ार हमें अधिक से अधिक चीजें अपनाने को प्रेरित करता है। आज बाज़ार पूँजी इकट्ठा करने केलिए प्रसिद्ध व्यक्तियों की चीजों को करोडों रुपयों में नीलाम करके बेचते हैं और इस उपभोगवादी नशे से व्यक्ति इसे खरीद भी लेता है। आज आदमी एक प्रकार के अहंपद के साथ चल रहा है कि पैसे है तो दुनिया अपने कदमों तले होगी। इसीकारण वह किसी भी चीज़ को करोडों देकर अपनाता है जिसका कोई भी उपयोग न हो। कहानी *'उपनिवेश'*[19] में नायिका नलिनी के द्वारा कहानीकार अजय गोयल ने इसी विचार को प्रस्तुत किया है –" फिलहाल हम है तो उस पीढ़ी के प्रतिनिधि जो माइकल जैक्सन द्वारा बरते टॉवल को लाखों में खरीद कर अपने जीवन को धन्य मानते हैं।"[20] बाज़ार अपने माल को बेचने केलिए 'ब्रांड अंबासडर' के पद में जाने-माने व्यक्ति को चुनता है और उनके द्वारा अपने माल को ज्यादातर लोगों तक पहूँचाने की कोशिश भी करता है। कहानी में *नलिनी,*

---

16 वहीं, पृ. 67.

17 वहीं – पृ. 68.

18 प्रभा खेतान :- बाज़ार के बीच, बाज़ार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. 187.

19 अजय गोयल :- उपनिवेश, हंस, जुलाई 2006, पृ. 70.

20 वहीं, पृ. 73.

ललित से पूछती है –" अपनी ब्रांड अंबासडर बनी सिने स्टार से पूछना चाहिए कि पैसों की खातिर विदेशी कंपनी की दलाल क्यों बन गई है?"[21]

4.1.1) मॉल संस्कृति

बाज़ारवाद ने पूरे देश को, शहर को, कस्बे को, गाँव को एक बड़े दूकान में बदल दिया, जिसे 'मॉल' नामक संज्ञा दी। इसकी विशेषता यह है कि एक छत के नीचे सबकुछ मिलते हैं। इस मॉल ने एक नई संस्कृति को पनपा। इसी मॉल संस्कृति के विभिन्न दुष्परिणामों का चित्रण हिंदी कहानी जगत में हो रहा है।

मॉल संस्कृति का जादुई प्रभाव पूरे समाज पर छा गया है। "एक छत के नीचे सबकुछ उपलब्ध है, सब्जी से लेकर साडी तक। पूरा मॉल एयरकंडीशण्ड अलग। शोपिंग का मजा ही कुछ और होता है मॉल में। थके तो चाय-काफी के शानदार रेस्तराँ। बच्चों केलिए खेल सामग्री। मॉल में हर एक चीज़ पर कुछ न कुछ ऑफर जरूर लगा रहता है। एक किलो आटा खरीदो तो सौ ग्राम मिर्च पाउडर फ्री, या फिर दो किलो डिटेरजेंट खरीदो तो एक शैंपू फ्री। आखिर ऑफरों के जाल में भला मानुष फॅस ही जाता है।"[22] *हरियश राय* की *'न धूप न हवा'*[23] कहानी इसी विषय पर आधारित है।

शर्मिला बोहरा जालान की कहानी *'कार्न-सूप'*[24] अत्याधुनिक डिज़ाइन में बनी हुई बड़ी-बड़ी माँल के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी की नायिका सुमन अपने पति के साथ मुंबई में छुट्टी मनाने के वास्ते आती है। सुमन के मन में मुंबई की ऐतिहासिक इमारतों या जगहों को देखने का आग्रह था। लेकिन विवेक की पत्नी रजनी उसे विदेशी मॉल जैसे

---

21 वहीं – पृ. 75.

22 सोफिया राजन :- श्रीमान-श्रीमति, संग्रथन , जून 2013, पृ. 15-16.

23 हरियश राय :- न धूप न हवा, नया ज्ञानोदय, फरवरी 2006, पृ. 47.

24 शामिला बोहरा जालान :- कार्न-सूप, नया ज्ञानोदय, मई 2007, पृ. 196

सजधज फिनिक्स, अट्रिया, सिटि सेंटर आदि मॉल में घूमने ले जा रही है –"मैं ले जाऊँगी आपको 'फिनिक्स', 'आट्रिया', 'सिटिसेंटर'। मॉल का जबरदस्त जादू ऐसा चढ़ेगा कि उतरेगा नहीं।"[25] सच में ऐसा घटित हो जाता है। छुट्टी का पूरा का पूरा दिन मॉल में ही बिताते हैं। बाज़ार का यह नया रूप, मॉल का मोहक वातावरण, जगमगाती रोशनी, चमकती चीजें सब मन को लुभा रहनेवाला था। " मॉल में घूमते-घूमते समय का पता नहीं चला। सभी ने अपने लिए कुछ न कुछ देखा। पसन्द किया, खरीद लिया, ढेर सारे पैकेट।"[26] राजेश भी अपने दोस्त के सामने 'स्टेटस' दिखाने केलिए खूब खरीददारी किया, विवेक से पैसा उधार लेकर भी खर्च करता है। जब घर वापस आता है, मॉल का नशा उतरता है। अनावश्यक वस्तुओं की खरीददारी पर पति-पत्नी के बीच झगडा होता है। कहानी का पात्र रजनी पूरी तरह उपभोग संस्कृति की धुन में चलनेवाली है। घर में सारी चीज़ें जैसे पोशाकें उसी रंग से मैच करनेवाली पर्सें, सैंडिल्स, कास्मेटिक्स इतने अधिक थे कि उन्हें रखने केलिए एक अलग कमरे की आवश्यकता पडी है। जो पैसा कमाती है, सब मॉल में ही खर्च कर देती है। हरेक दिन कोई न कोई कारण बताके 'सेलिब्रेट' करती है। आज मानव उच्चवर्गीय विलासिता पूर्ण जिन्दगी के आनन्द लेने में व्यस्त हैं।

निस्संदेह उपभोक्ता ही वैश्वीकरण का केन्द्र है। आज उपभोक्ता की रुचि बाज़ार निश्चय करता है। मीडिया और विज्ञापन के ज़रिए अब आम जनता भी बड़ी-बड़ी कंपनियों की प्रोडक्टों को ही खरीदते हैं। अब 'ऑनलाइन व्यापार' का समय है। साधारण उपभोक्ता भी 'ब्रान्डड' चीजें ही खरीदता है और क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल भी करता है। विज्ञापनों के मायाजाल में फॅसकर आज युवा पीढ़ी 'ब्रान्डड कल्चर' का

---

25 वहीं, पृ. 196

26 वहीं – पृ. 198.

गुलाम बन गयी है। उनमें सोच-विचार करने का मौका भी इन बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ छीन ली है। *प्रभा खेतान* का विचार यहाँ समीचीन है –" ब्रांड से निर्मित होता हुआ उपभोक्ता स्वयं में एक ब्रांड बन जाता है- एक भोगा जाता हुआ ब्रांड। इसी प्रवृत्ति को फैशन, रुचि, जीवनशैली कहा गया और भूमण्डलीकृत समाज में इसीके आधार पर सामाजिक भिन्नताएँ आधारित होती है।"[27]

अक्सर यह देखा जाता है कि हम मॉल या बडी-बडी दूकानों से चीजें वहाँ लगे दाम में खरीद लेते हैं। जबकि दो वक्त की रोटी केलिए फुट-पाथ पर सामान बेचनेवाले गरीब लोगों से हम मुँह लडाते हैं और 'बारगैनिंग' करके सामान खरीदते हैं। इस चारित्रिक विशेषता पर *पावन* द्वारा रचित *'सान्ता नहीं चाहिए'*[28] कहानी में यों उल्लेख किया है- " पता नहीं, सब लोगों को इस टोपी के दाम ज्यादा क्यों लगते हैं? हो सकता है, इसे मैं बेच रही हूँ इसलिए.... अगर ये टोपी शीशेवाली बडीदूकानों में रखी होती तो कोई इसकी कीमत की ज्यादा नहीं कहता। वहाँ लोग इसे सौ रुपये में भी चुपचाप खरीद लेते।"[29]

4.1.2) अवैध स्त्री-पुरुष संबन्ध

उपभोगवादी संस्कति ने स्त्री-पुरुष संबन्धों को भी प्रभावित किया है। इसने स्त्री-पुरुष संबन्धों को प्रोडेक्ट-उपभोक्ता या माल-विक्रेता के रूप में तब्दील कर दिया है। *शिवकुमार शिव* की *'सुरंगे'*[30] कहानी की मिसिस अग्रवाल अपने पति की तरक्की केलिए, विलासिता पूर्ण जिन्दगी बिताने केलिए बाँस से शारीरिक संबन्ध बना लेती है।

---

27 प्रभा खेतान :- बाज़ार के बीच, बाज़ार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, 2004, पृ.187.

28 पावन :- सान्ता नही चाहिए, कथादेश – जून 2008, पृ. 30

29 वहीं , पृ. 33.

30 शिवकुमार शिव :- सुरंगे, हंस, जुलाई 2002, पृ. 44.

इतना ही नहीं स्मार्टनस के चक्कर में गाड़ी चलाना सीखा, सिगरेट और शराब पीने लगा और कंप्यूटर सिखाने आये राजमणि से हमबिस्तर भी कर रही है। आज के इस भोगवादी दुनिया से स्त्रीयाँ अपने यौन सुख का भी आनंद ले रहा है। इनकेलिए संबन्धों में पवित्रता का कोई महत्व नहीं है। उन्हें सिर्फ अपनी भोग-विलासीय जिन्दगी केलिए पैसा ही चाहिए। कहानी में 'सुमंगला' अपने पति से कहती है –" ये औरतें संसार में एक ही चीज़ पहचानती है, वह है पैसा। इनकेलिए पति का कोई महत्व नहीं सिवा इसके कि वे किस हद तक पैसा कमाने की करगुजारी कर सकते हैं।"[31] असल में आज स्त्री बिकाऊ बन गई है और पुरुष कमाऊ बन गया है। कहानी *'परिमला तुम हार गई'*[32] में भी परिमला अपने पति केलिए अय्याशी जुटाने का साधन थी। *प्रतिभा दास* की कहानी *'चरित्रहीन'*[33] में भी अपने पति के स्थानांतरण केलिए अनन्या निर्माण विभाग के मंत्री अविनाश से हमबिस्तर कर रही है। *प्रीति श्रीवास्तव* की *'गॉड फादर'*[34] में इच्छा भौतिक सुख-सुविधा की लालसा से राजनेता सुबीरनाथ से अवैध संबन्ध रखती है। इस संबन्ध के फलस्वरूप वह नया घर, जाने केलिए कार, बच्चों केलिए अच्छे परवरिश आदि जुटाती है। इस संदर्भ में रोहिणी अग्रवाल का विचार बड़ा संगत लगता है- " स्वयं स्त्री ने अपनी अस्मिता को देह में ढूँढने का जतन किया है। बेशक स्त्री केलिए यह स्थिति बेहद घातक है, लेकिन चुनाव तो उसी का है। पैसे और प्रतिष्ठा के लोभ में बाज़ार की भोगवादी ताकतों के हाथों बिक जाना आज के दौर की एक भीषण सच्चाई है।"[35]

---

31 वहीं, पृ. 47.

32 जयंती :- परिमला तुम हार गयी, हंस, आगस्त 2002, पृ.16

33 प्रतिभा दास :- चरित्रहीन, हंस, अप्रैल 2010,पृ. 21.

34 प्रीति श्रीवास्तव :- गॉडफादर - हंस , अप्रैल 2006, पृ. 42.

35 रोहिणी अग्रवाल :- अंतिम दो दशकों का हिंदी दलित साहित्य (अंतिम दो दशकों का हिंदी साहित्य - सं. मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008.)

4.2) बाज़ारीकरण के युग में स्त्री

आज शिक्षा के बढने के साथ ही साथ स्त्री आत्मनिर्भर होने लगी और भूमण्डलीकरण के वर्तमान युग में आत्मनिर्भर स्त्री सामाजिक जीवन के नए नए क्षेत्रों में घुसकर वहाँ अपनी सफलता का परिचय देने लगी। असल में इस आर्थिक ताकत के बहाने बाज़ार स्त्री का शोषण कर रहा है। इस वैश्वीकरणोन्मुखी समाज में स्त्री के प्रति व्यावसयिक और भोगवादी नज़रिया अधिक से अधिक बढने लगी। इस भोगवादी संस्कृति के नग्न निरंकुश सत्ता प्रतिष्ठान में स्त्री एवं स्त्री देह प्रमुख हिस्सा है जहाँ स्त्री बार-बार शोषण का शिकार बन रही है।

4.2.1) स्त्री देह का बाज़ारीकरण

बाज़ार अपने माल बेचने केलिए कुछ भी कर सकता है। आज भारत एक विश्व बाज़ार बन गया है। यहाँ हर चीज़ बिक जाती है। विश्वसुन्दरी प्रतियोगिता के बहाने बाज़ार अपनी सौन्दर्यवर्धक वस्तुओं की बिक्री में सफलता प्राप्त कर चुकी है। कुछ वर्ष पहले तक विश्वसुन्दरी प्रतियोगिता में भारत की स्त्रीयाँ ही विजयी होती थीं। इन प्रतियोगिताओं ने भारत जैसे विकासशील देशों में फैशन और मोडलिंग के क्षेत्र को अभिवृद्ध कराया। अब बाज़ार ने यह महसूस किया कि विज्ञापन जगत में स्त्री को एक विशेष ढंग से प्रस्तुत की जाए तो पूरे उपभोक्ता को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। इसलिए आज के प्रायः सभी विज्ञापनों में एक स्त्री की अर्धनग्न छवि अनिवार्य है, जहाँ उसकी उपस्थिति की आवश्यकता न हो।

बाज़ार और मीडिया सौन्दर्य प्रतियोगिता का आयोजन करके स्त्री देह का मुक्त आस्वादन करते आ रहे हैं। *पंखूरी सिंहा* की कहानी *'समानांतर रेखाओं का आकर्षण'* में विश्वसुन्दरी प्रतियोगिता का सच्चा चित्र देखा जा सकता है- "ऐसी प्रतियोगितायें हड्डियों के ऊपर मांस, वसा और चमडे के नियंत्रण से जीती या हारी जाती है।

प्रतियोगिता की यही शर्त थी कि जो सबसे अधिक चर्बी घटा सकेगा, वह विजयी होगा।"[36]इन सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में मन और आत्मा की सुन्दरता का नहीं बल्कि दैहिक सौन्दर्य को ही महत्व दिया जाता है। क्योंकि बाजारवादी मूल्य शारीरिक सौन्दर्य को ही मुद्रों में तौलता है। प्रसिद्ध आलोचक *कृष्णदत्त पालीवाल* के अनुसार "विश्वसुन्दरी प्रतियोगिताओं में संस्कृति का नया सौन्दर्य शास्त्र, सामाजशास्त्र, झाँक रहा है। यही है न मुक्त देह का नवरीतिवादी अप्सरावाद। यह अप्सरावाद हमारे घरों में घुस चुका है। स्त्री देह से खेलनेवाला समाज संगीत की संस्कृति में सेक्स का छौंक लगा रहा है।"[37]

सुदर्शन नारंग की कहानी *'पटाक्षेप'*[38] की नायिका *गायत्री* मजबूरीवश दूसरों से हमबिस्तर करती है। गरीबी और बेरोजगारी उसे इस धंधे में धकेलती हैं। तोहफा के रूप में कीमती चीजें, पचास हजार तक पैसे, सौन्दर्य प्रसाधन वस्तुएँ सब मिलती हैं। रहने केलिए बडा आलीशान अपार्टमेंट, घूमने केलिए गाडी सब उसके पास हैं। वह कहती है- "जब सब गलत चल रहा है तो हम खामोश क्यों हैं।"[39] कहानी *'जिन दिन देखे वे कुसुम'* के द्वारा कहानीकार *लता शर्मा* कहती हैं –" लडकियों का धंधा सर्वाधिक लाभप्रद धंधा है, सदा से था। अर्थशास्त्र के सब नियम तोड दिये लडकी नाम की चीज़ ने। मांग कम.... आवक ज्यादा... मूल्य कम, मांग ज्यादा, आवक कम... लेकिन मूल्य नगण्य।"[40] प्रस्तुत कहानी में एक सोलह साल की लडकी *इयात* के अपहरण का वर्णन है। कहानीकार आगे कहती हैं - " लडकियों की संख्या कम होने पर भी लडकियों

---

36 पंखूरी सिंहा :- समानांतर रेखाओं का आकर्षण , हंस, मार्च 2006, पृ. 66

37 कृष्णदत्त पालीवाल :- भूमण्डलीकरण और साहित्य , समकालीन भारतीय साहित्य, जूलाई-अगस्त 2011, पृ. 205.

38 सुदर्शन नारंग :- पटाक्षेप , हंस, सितंबर 2006

39 वहीं, पृ. 44

40 लता शर्मा :- जिन दिन देखे वे कुसुम , हंस, सितंबर 2004, पृ. 47

की बाज़ारभाव नहीं बढ़ा। उल्टे उनकी कालाबाज़ारी होने लगी। जहाँ भ्रूण हत्या और भ्रूण निर्धारण केलिए भी पैसा नहीं है, वहाँ खूब लडकियाँ है। अतः वहाँ से लाकर, जहाँ नहीं है सप्लाई करो।"[41] यही सिद्धान्त आज अविकसित तथा भारत जैसे 'तीसरी दुनिया' के साथ चल रहा है। याने भारत को एक *सेक्स बाज़ार* के रूप में देखा जाता है। *तेजेन्द्र शर्मा* की *'छूता फिसलता जीवन'* नामक कहानी में यह पश्चिमी पुरुषवादी वर्चस्व देखा जा सकता है। इसमें ब्रिटन में जन्मी, पली, पढी, बडी हुई भारतीय लडकी *मन्दीप ब्रार* के साथ वहाँ के मूल निवासी जेम्स जबरदस्ती करते हुए देखने पर भी लोग खामोश रह जाते हैं- " जो इस बात के शायद आदी थे कि एक गोरा युवक एक भारतीय मूल की लडकी के साथ जबरदस्ती कर रहा है।"[42] यह सच है कि भारत से निर्याती माल या वस्तु में बडी मांग औरत को ही है। आखिर सेक्स ही है बाज़ार में सबसे बडी बिकाऊ चीज़। लेखक रामशरण जोशी के अनुसार –" सेक्स व्यापार नौतिकता का सवाल न रहकर एक उद्योग के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।"[43] *'दि बिज़नेस'* कहानी में नायक *सैमुवल* के द्वारा कहानीकार व्यक्त करता है कि निवेश के बिना शुरू करनेवाला लाभदायक धंधा है 'सेक्स'–"उसे ऐसे नुस्खे की तलाश है जो धन कमाने की अचूक औषधि हो और उसमें विद्युतगति हो और किसी महाजन, किसी बैंकर, किसी दलाल की जरूरत न हो।"[44]

शैल अग्रवाल की *'यादों के गुलमोहर'* कहानी में भी इसी पुरुषवादी मानसिकता को दर्शाया गया है। कहानी में *मोहित* अपनी पत्नी *रेश्मा* को हनिमून हेतु वेनिस ले जाता है। भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी *रेश्मा* को लेकर *मोहित* कसीनो जाता है। वहाँ के

---

41 वहीं, पृ. 47.

42 तेजेन्द्र शर्मा :- छूता फिसलता जीवन , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008, पृ.43.

43 रामशरण जोशी :- भोगवादी संस्कृति से साक्षात्कार , हस्तक्षेप, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 163

44 रामेश्वर प्रेम :- दि बिजनेस , हंस, नवंबर 2003, पृ. 47

माहौल से अपरिचित *रेश्मा* अकेली पड जाती है। इसे अकेली देखकर एक यूरोपियन उसे बाँहों में पकडकर अपनी तरफ खींचने लगा और कानों में धीरे से फुसफुसाया –" क्या मेरा नम्बर चाहिए तुम्हें, निराश नहीं करुँगा मैं, वैसे भी मैंने किसी भारतीय युवती को कभी गोदी में नहीं बिठलाया।"[45]

नरेन्द्र सैनी की *'एक अधूरी डायरी की चन्द सतरें'* में बारह वर्ष की उम्र में दीवाली के दोपहर में *हसीना* के सपनों को चिंदी-चिंदी कर लिया और उसे अपने शरीर से घृणा करने को मजबूर कर दिया। बाद में हसीना स्वयं अपने प्रेमी से शारीरिक संबन्ध स्थापित करती है, जो "लडकियाँ कंडोम होती है"[46] में विश्वास रखनेवाला है। *हसीना* का उपयोग और उपभोग प्रेमी भी करता है।

4.2.2) शोषण का नया रूप

भूमंडलीकरण, बाज़ारीकरण और उपभोगवाद ने जिस तरह समाज में विभिन्न तरह के बदलाव पहूँचाया है, उसी तरह शोषण, विशेष कर स्त्री शोषण के नये-नये आयाम भी खोज निकाला है।

4.2.2.1) मॉडलिंग

बाज़ार की चकाचौंध से भ्रमित होकर आज की लडकियाँ 'मॉडलिंग' को अपने कैरियर के रूप में चुनती हैं। कम समय में थोडी मेहनत से ज्यादा पैसा मिलनेवाली इस दुनिया को लडकियाँ पसन्द करती हैं और इसमें फॅस भी जाती हैं। *सोहनशर्मा* की *'वो आखिरी बार सैनफ्रांसिस्को में देखी गयी थी'* एक ऐसी कहानी है जिसमें *प्रिया चावला*, जो इस कहानी की नायिका है, मॉडलिंग को बहुत अधिक मानती है –" प्रिया की दुनिया

---

45 शैल अग्रवाल :- यादों के गुलमोहर , abhivyakthi.com, vatan se door, 2003, पृ.5

46 नरेन्द्र सैनी :- एक अधूरी डायरी की चन्द सतरें , कथादेश, जुलाई 2004, पृ. 70.

में है फैशन की चकाचौंध और आसमान छूती महत्वाकांक्षायें।"[47]इस महत्वाकांक्षा से वह न्यूयोर्क के 'एड एजेंसी' के मालिक *महेन्द्र* के साथ की शादी को भी टाल देती है और वहाँ की एक मशहूर विज्ञापन एजेंसी में मॉडल बन जाती है। वह कहती है –" किसी की पत्नी बनकर अपने कैरियर की बलि चढा देना कोई बुद्धिमानी नहीं है।"[48] फैशन या विज्ञापन की दुनिया स्थायी नहीं है। नये नये खूबसूरत मॉडल के आगमन से पुराने चेहरे को धीरे-धीरे हटा दिया जाता है। *प्रिया* की स्थिति भी इससे अभिन्न न हुआ। इसी बीच विज्ञापन कंपनी के *शेखर* की हवस का शिकार भी बनी। फिर *शेखर* ने दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका *प्रिया* को। असल में कहानीकार *प्रिया* के माध्यम से यह बताती है कि नारी को समझ जाना चाहिए कि यह सब तब तक है जब तक उसके पास सौन्दर्य है।

भूमंडीकृत समाज तथा बाज़ारी संस्कृति में स्त्री का देह एक 'कमोडिटि' बन गया है। "मॉडल बनने केलिए एक ब्यूटिफुल बॉडी की जरूरत होती है, जो मेरे पास है।"[49] यही सोच *राजेन्द्र लहरिया* की *'सवाल'* नामक कहानी की नायिका *सुलक्षणा* की जिंदगी का भी अभिशाप बन गया है। *सुलक्षणा* को मॉडल बनाने का वादा करके *रेवतीनाथ* ने उसे आदमकद शीशा, क्रीम, पाउडर, लिप्स्टिक आदि प्रसाधन सामग्रियाँ देकर मोहित किया और अन्त में वह यौन शोषण का शिकार बन गई। आलीशान जिन्दगी के प्रति लालच से आज की लडकियों में अपने स्त्रीत्व को भी बेचने में कोई संकोच नहीं होती।

---

47 सोहनशर्मा :- वो आखिरी बार सैनफ्रांसिस्को में देखी गयी थी , हंस, जनवरी 2009, पृ. 64.

48 वहीं – पृ. 67.

49 राजेन्द्र लहरिया :- सवाल , नया ज्ञानादय, नवंबर, 2008, पृ. 49.

संगीता आनंद की *'अब क्या होगा शैली'*[50], *जयंती* की *'परिमला तुम हार गयी'*[51] कहानी में भी मॉडलिंग के नाम पर लडकियों की दलाली को चित्रित किया है।

मॉडलिंग की दुनिया में टिके रहने केलिए कालगर्ल बनी *पायल* की कहानी है *आर.के पालीवाल* की *'भगवान पायल को बचाये रखना'*। कहानीकार कहते हैं–"पायल ने गलत लाइन अपनी मनमर्जी से तो नहीं पकडी। मौजमस्ती उसका उद्देश्य नहीं है लेकिन जरूरत से ज्यादा एंबीशन है उसमें। उसी बीमारी ने धकेला है उसे इस दलदल में।"[52] आज की लडकियों में पनप रही 'ओवर एंबीशन'उसे एक खतरनाक स्थिति पर पहूँचाती है जहाँ उनके स्त्रीत्व का भी कोई मूल्य नहीं होती।

4.2.2.2) ऑनलाइन रोमान्स

पौराणिक काल से लेकर आज तक स्त्रीयों के शोषण में कोई कमी नहीं आई, बल्कि वह दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। फर्क तो इतना है कि शोषण का साधन, क्षेत्र और तरीके में परिवर्तन हुआ है। याने शोषण का मापदंड नहीं बदला है, बदल गया है शोषण का साधन। यह तो सच है कि भूमण्डलीकरण के कारण स्त्रीयों में भी अपने घर के चार दीवारों से बाहर आकर पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर नौकरी करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। आज के लगभग सभी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में नौकरीपेशा स्त्रीयों की संख्या बहुत अधिक है। लेकिन इसतरह की आर्थिक-सबल स्त्रीयों को भी किसी-न-किसी प्रकार के शोषण का शिकार बनना पडता है। विज्ञान एवं तकनीकी के बढती प्रगति के कारण नये नये उपकरणों का आविष्कार होने लगी और मानव भलीभाँती इसका उपयोग एंव दुरुपयोग करने लगे।

---

50 संगीता आनंद :- अब क्या होगा शैली , हंस , मार्च, 2004, पृ. 45.

51 जयंती :- परिमला तुम हार गई , हंस, अगस्त 2002, पृ.16.

52 आर.के. पालीवाल :- भगवान पायल को बचाये रखना , हंस, मार्च 2009, पृ. 54.

तकनीकी के अधुनातन सुविधा इंटरनेट द्वारा हो रही स्त्री शोषण पर आधारित कहानी है *सरिता शर्मा* की *'वैक्यूम'*। प्रस्तुत कहानी में नौकरीपेशा युवती को बस में से परिचित युवा, चैटिंग करते करते अन्त में ऑनलाइन रोमान्स करने को प्रेरित करता है। इतना ही नहीं वह अपनी पत्नी के साथ की सेक्स वीडियो फिल्म भी दिखाता है। उसे सेक्स के सिवाय और किसी बात में कोई रुचि नहीं है। जब भी ऑनलाइन में हो वह सीधे कहता है 'कपडे उतारो' नायिका *'मैं'* द्वारा कहानीकार कहती हैं–" पत्नी से बनती नहीं। इंटरनेट पर अनजान अपरिचित महिलाओं से उसे सेक्स की संतुष्टि चाहिए। वह भी चैट और वेबकैम के जरिए।"[53] तकनीकी विकास की उपलब्धियों के इस अधुनातन दौर में हज़ारों साल पहले का दुशासन ग्रंथि पीडित पिलपिला कीडा के समान बदल गया है आज का मानव। इंटरनेट आज सर्वत्र एक अनिवार्य नकनीकी साधन बन गया है। लेकिन लोग इसका दुरूपयोग ही ज्यादा कर रहे हैं। आज सभी कार्यालय इंटरनेट से जुडी हुई हैं। ज़रूरत न होने पर भी कर्मचारी लोग देर रात तक दफ्तर में नेट पर लगे रहते हैं। इसमें युवा लोग ही नहीं बल्कि अधेडावस्था या रिटायरमेंट की उम्रवाले सज्जन भी अनजान युवतियों के साथ रोमांटिक चैट में लगे रहते हैं, साथ ही साथ पोर्न फिल्म भी देखते हैं।

विज्ञान और तकनीकी का जितना विकास हो रहा है स्त्रीयों के प्रति उतना घटिया सोच हो रहा है। उसे अब भी सिर्फ और सिर्फ भोगवादी वस्तु के रूप में ही स्थान दिया जाता है। 'विश्वास यही है सबकुछ' आप्तवाक्य भी आज खतरे के दायरे में है। प्रेम या प्यार अब बाज़ारवाद में बदल गया है, जहाँ पुरुष उपभोक्ता है और स्त्री भोग की वस्तु।

---

53 सरिता शर्मा :- वैक्यूम , हंस, जूलाई 2009, पृ. 21.

4.2.2.3) रियालिटि शो

दैहिक शोषण का नया क्षेत्र है टी.वी चैनलों का 'रियालिटि शो'। इसमें भ्रमित होकर अपनी जिंदगी को बरबाद करनेवाली अनेक युवतियों की दुखपूर्ण दास्तान कुछ सुनी और कुछ अनसुनी बनी रहती है। *प्रभात रंजन* की कहानी *'मिस लिली'*[54] में भी यह दिखाया गया है कि लडकियों को रियालिटि शो का नाम बताकर तथा झूठे प्रेम में फँसाकर अन्त में उनके साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित कर ब्लैकमैल करके देहव्यापार के विशाल बाज़ार में धकेल दिया जाता है। *'मिस लिली'* में *अरुण चौधरी* ने *लिली* को रियालिटी शो का प्रस्ताव देकर शहर ले जाता है और *लिली* के साथ की अपने अन्तरंग क्षणों की सी.डी दिखाकर उसे ब्लैकमैल करती है और अन्त में उसे यूरोप के बाज़ार में बेच देता है, वहाँ लडकियों की बडी मांग थी। इतना ही नहीं सी.डी बेचकर वह खूब पैसा भी कमाता है। खूब प्रसिद्धि अर्जित करने केलिए या टी.वी में अपनी सुंदर छवि दिखाने की लालसा आज की लडकियों में बढ़ रही है, लेकिन इसके पीछे छिपे छलन के बारे में तो वह अज्ञ हैं।

भूमण्लीकरण के फलस्वरूप स्त्री अपने को इस परंपरागत पितृसत्ता से छुटकारा मिला मानकर चल रही है। लेकिन असल में वे आज एक नये किस्म की पुरुषसत्ता की गिरफ्त में दबी हुई है। याने भारतीय नारी घरेलू गुलामी से मुक्त होकर अब बाज़ारवाद की गुलाम बन गयी है। बाज़ारवाद के कारण आज नारी, नारी न रहकर मात्र एक मॉडल के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है तथा वह बाज़ार की अन्य वस्तुओं के समान केवल एक वस्तु बनकर रह गई है। बाज़ार में आज वह भी एक बिकाऊ चीज़ है । वर्तमान समय में स्त्रीयों का सिर्फ मानसिक रूप से ही नहीं बल्कि शारीरिक एवं आर्थिक रूप से भी शोषण हो रहा है। आज नारी विलासिता, देह प्रदर्शन एवं देह साधन केलिए

---

[54] प्रभात रंजन :- मिस लिली , नया ज्ञानोदय, मई 2007

'डायटिंग', अनाहार, 'कॉस्मेटिक सर्जरी' तथा 'प्लास्टिक सर्जरी करने को भी तैयार है जिससे वह अधिक सुन्दर हो जायें। विश्वसुन्दरियाँ एवं फिल्मी अभिनेत्रियाँ भी इसके अपवाद नहीं है।

4.2.3) मुक्त जीवन दृष्टि

आज की युवा पीढ़ी उन्मुक्त एवं बन्धनहींन ज़िंदगी जीना चाहती है। वे सामाजिक एवं पारिवारिक कार्य-कलापों से दूर रहना चाहती है। अर्थात् मानव समष्टि से व्यष्टि की ओर जा रहा है। वैश्वीकरण से हुई आर्थिक ताकत एवं स्त्री सशक्तीकरण के फलस्वरूप स्त्रीयाँ भी अपने पिंजरे से बाहर निकलने लगी और उनमें मुक्त गगन में उडने की आशा जगने लगी।

'अपना कमरा'[55] कहानी अपनी सत्ता और स्वतंत्रता केलिए संघर्षरत एक आधुनिक सोचवाली लडकी की कहानी है। कहानी की नायिका *सरिता* अपनी मर्जी से जीना चाहती है। उसका सपना है अपने लिए एक फ्लैट "साफ कहूँ तो सिर्फ अपना"[56]। यह सिर्फ अपना आधुनिक नारी का सपना है। क्योंकि आज तक स्त्री का अपना घर नहीं होता। घर बाप का होता है, पति का होता है फिर बेटे का होता है। सरिता अपने परिवार से दूर रहकर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। लेकिन कहानी के अन्त में सरिता अपनी इस एकांकी जिंदगी से ऊबकर घर वापस लौटती है। यह एक चिरंतन सत्य है कि आदमी समाज या परिवार से अलग, सदैव स्वतंत्र नहीं रह सकता।

आज स्त्री अपने पैरों पर खडे रहना चाहती है। नौकरीपेशा स्त्रीयों की संख्या दिन- प्रतिदिन बढती जा रही है। *'शैम्पेन'*[57] कहानी की नायिका *प्रिया* अपनी दक्षता,

---

55 सोनी सिंह :- अपना कमरा, हंस, फरवरी 2004, पृ. 43.

56 वहीं , पृ. 43.

57 राजीव शर्मा :- शैम्पेन, वर्तमान साहित्य, फरवरी 2009

योग्यता, आत्मविश्वास, लगन तथा मेहनत से अपने रूढीवादी वातावरण से अलग होकर, केवल चारदीवारी तक सीमित रखनेवाले समाज से स्वतंत्र होकर अपनी जिन्दगी बिताती है। उसकी काबिलियत के फलस्वरूप बंगला, सफर केलिए कार सब मिलता है। साथ ही साथ अपने जीवन साथी को भी स्वयं चुनती है। वैश्वीकरण के सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि स्त्रीयों में अपने स्वाभिमान को बचाये रखने की चेतना जागृत हुई। उसमें स्वयं के बारे में निर्णय लेने की सजगता आई। *मालती जोशी* की कहानी *'पटाक्षेप'* में नायिका *मीरा* अपने स्वाभिमान की रक्षा केलिए सगाई तोडती है। वह अपने पिता से कहती है –" मुझे मेरा आत्मसम्मान प्रिय है। तानाशाही और हिप्पोक्रेसी - मैं इन दोनों बातों से नफरत करती हूँ। और इस इंसान में ये दोनों चीजें कूट कूट कर भरी हुई है। इक्कीसवीं सदी में वह सोलहवीं सदी का प्राणी बना हुआ है। ऐसे आदमी के साथ जिन्दगी गुज़ारना मेरे लिए बहुत मुश्किल है।"[58] फिर वह फोन करके आनंद से कहती है –" मैंने यह कहने केलिए फोन किया है कि न मैं नौकरी छोड रही हूँ न नाटक से मुँह मोड रही हूँ। हाँ, पर यह सगाई जरूर तोड रही हूँ। गुड बाय।"[59]

उसी प्रकार *अरुणप्रकाश ढौंडियाल* की *'संबंधों के दंश'* कहानी में नीरजा भाई से बताती है- " मैं उपभोग की वस्तु तो नहीं। टेबल का गुलदस्ता माना गया है मुझे! मैं संदूक में रखा जानेवाला एलबम हूँ क्या? पति मुझे मित्र की जगह संपत्ति मानता है। उसने मेरे बचपन को कलंकित करके मेरी जवानी की हत्या की है। मैं खूँटी पर बाँधा जानेवाला पशु तो नहीं हूँ विभू दा। मैं तलाक चाहती हूँ।"[60]

---

58 मालती जोशी :- पटाक्षेप , साक्षात्कार, जूलाई 2008, पृ.15.

59 वहीं, पृ. 15.

60 अरुण प्रकाश ढौंडियाल :- संबन्धों के दंश , समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी – फरवरी 2003, पृ. 76.

उसीप्रकार *विजय* की *'रेस का घोडा'*[61] कहानी में पति *नीरज* की अकाल मृत्यु से अपने छोटे बेटे *अमर्त्य* के साथ अकेली हो गयी *वसुधा* अपनी आत्मसम्मान और आत्मगौरव के साथ स्थितियों का सामना करनेवाली एक सशक्त नारी है। उसका मानना है कि आज के भौतिकवादी समाज में निजी संबंधों की भी कोमल भावनाएँ तभी बची रह पाती है जब व्यक्ति रिश्तों की आर्थिक कसौटी पर खरा उतरे। अन्यथा अपने ही परिवार में उसका मोल दो कौडी का हो जाता है। जब *नीरज* की मृत्यू हुई तथा *वसुधा* और *अमर्त्य* बेसहारा पड गये तब वसुधा के भाई एवं भाभी भी अपने कंधे पर अनावश्यक मुसीबत झेलने को तैयार नहीं हुए। लेकिन जब वसुधा की आर्थिक स्थिति सुधर गयी तब दोनों का तेवर बदल जाता है। तब उनकी बेटी कहती है –"पहले डर रहता था कि बुआ के लिए कुछ करना होगा जो अब हमें ही उलटा दे सकती है।"[62] लेकिन वसुधा रिश्तों में छुपी चालाकी को समझ चुकी है। कहानीकार कहते हैं –" पैसा ही कवच और पैसा ही ऊँचाई देता है आज के वक्त में। रिश्ते सिर्फ मगरमच्छ के आँसू मात्र रह गए हैं।"[63]

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने स्त्री को स्वतंत्र बना दिया है और स्त्री कुछ हद तक इस स्वतंत्रता का सदुपयोग भी कर रही है। आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री को पूर्ण रूप से स्वतंत्र बना दिया है और इससे वह अपनी जिन्दगी में सबल बनने में सक्षम हुई।

4.2.4) उन्मुक्त जीवन शैली

वैश्वीकरण से मिली आज़ादी स्त्रीयों के विचार में भी बदलाव पैदा करती जा रही है। आज युवतियाँ भी मस्ती भरी जिन्दगी की ओर आकर्षित हो रही हैं। वे जीवन के

---

61 विजय :- रेस का घोड़ा , अक्षरपर्व, जून 2007

62 वहीं, पृ. 110

63 वहीं – पृ. 110.

उस उन्मुक्त गगन में उड़ना चाहती है जहाँ कोई बंधन न हो। युवा पीढ़ी में पनपी मौजमस्ती भरी जिंदगी की ओर रुझाव आज सब कहीं देखा जाता है। इसकी ओर संकेत करनेवाली अनेक कहानियाँ पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

'वीक एंड'[64] कहानी में चार लडकियाँ हर वीक एंड में किसी एक के घर में जमाकर वोदका पीती हैं सिगरेट फूँकती हैं तथा ब्लू फिल्म देखती है। रात में घूमती है, थियेटर जाती है। चारों ने अपने मनमर्जी से अपनी जिंदगी आगे चलाती है। एक लिविंग टु गेदर में रहती है, एक अपने बॉस से हमबिस्तर करके धन, विदेश यात्रा, कीमती चीजें हासिल करती है तो एक विज्ञापन कंपनी का मॉडल और एक जर्नलिस्ट है। सब अपने घर से दूर नौकरी के वास्ते महानगर दिल्ली में आयी है और अपनी मुक्त एवं आज़ाद जिंदगी का भरपूर आस्वादन भी करती हैं।

'सबसे अच्छी लडकी'[65] कहानी में *सौरभ, पिंकी* तथा *राकेश* की दोस्ती वोदका, ताश, सिगरेट, पिज्ज़ा-बरगर से होती है और वहीं ख़तम भी हो जाता है। *गीताश्री* की *'प्रार्थना के बाहर'*[66] में भी नायिका *प्रार्थना* उन्मूक्त जिंदगी जीती है। इस उन्मुक्त जीवन के पीछे की मानसिकता कहानी में ऐसा व्यक्त किया है –" देख.... मेरे लिए कोई एक व्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है मेरा रास्ता.... मेरी पसंद.... मेरा आनंद... और आनंद का कोई चेहरा नहीं होता.....जो जितनी दूर साथ चले..... चले ..... नहीं तो भाड़ में जाए, मैंने किसी से कमिटमेंट नहीं किया ना लिया, आई डू नौट इंडल्ज इन मिडिल क्लास मेंटिलिटि... आई हैव ओनली वन लाइफ एंड आई वांट एक्साइटमेंट विदाउट रीगरेट....दैटस इट. कुछ ऐसा कर गुजरना है जिससे लोग याद रखें....

---

64 रश्मि काव :- वीक एंड , हंस, अगस्त 2002. पृ. 64

65 अभिषेक कश्यप :- सबसे अच्छी लडकी , हंस, अगस्त 2009

66 गीताश्री :- प्रार्थना के बाहर , हंस, अगस्त 2002.

बस।"[67] ऐसा लगता है कि यह उन्मुक्त ज़िंदगी स्त्री की स्वतंत्रता से अधिक उसकी मध्यवर्गीय सोच-विचार के प्रति एक घृणा भरी विरोध है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में स्त्री की स्थिति बहुत कुछ बदल गयी है। लेकिन यह बदलाव जिस दिशा में हुई इस पर विचार करना ज़रूरी है। इस संदर्भ डॉ. हरदयाल का कथन प्रासंगिक है -"समसामयिक हिंदी कहानी में स्त्री की स्थिति को लेकर स्पष्ट बदलाव परिलक्षित किया जा सकता है। सामान्यतः स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व- संपन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, उसके साथ विभिन्न उपयोगों में आनेवाली 'वस्तु' के रूप में व्यवहार किया गया है।"[68]

4.3) आर्थिक असंतुलन और आम जनता की जिंदगी

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के साथ बाज़ार में आई चमक-दमक और रोज़गार के नए-नए अवसरों ने भारतीय मध्यवर्ग के स्वप्नों का विस्तार किया। लेकिन इन विदेशी कंपनियों की नीतियों के दुष्परिणाम के सामने आज ये मध्यवर्ग चौंककर रहने लगे। कृषि अर्थव्यवस्था का पतन, बढ़ रही बेरोज़गारी, खेतों का हडपीकरण, शहरीकरण आदि समस्याओं से आम जनता विशेषकर गाँव-वासियों की परेशानी और अधिक बढ गई। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप उगे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कारण हमारे यहाँ के देशी उद्योगों तथा लघु कुटीर उद्योगों का सर्वनाश होने लगा और उसीसे जीविका चलानेवाले बेकार बनकर या तो आत्महत्या करते हैं या अपनी दुर्गति को कोसकर जी रहे हैं। अमीर लोग अधिक से अधिक अमीर और आमजनता अधिक से अधिक गरीब होने की स्थिति वैश्वीकरण के फलस्वरूप उभरकर आयी है।

4.3.1) मल्टीनैशनल कंपनियों का दखलअंदाज

---

67 वहीं , पृ. 20.

68 डॉ. हरदयाल :- हिंदी कहानी : परंपरा और प्रगति , वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 208.

भूमंडलीकरण का मुख्य उद्देश्य है निजीकरण। इस प्रक्रिया को अंजाम देने का दायित्व मल्टीनैशनल कंपनियों को है। आज मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में मल्टीनैशनल कंपनियों का घुसपैठ हो रहे हैं। *पुन्नी सिंह* की *'त्रास'*[69] कहानी भी किसानों की आत्महत्या पर आधारित है। कहानी का नायक देवेन्द्र का परिवार एक तरह से अच्छे खाते-पीते सामान्य कृषक परिवार थे। पिता रामचंद अपनी ज़मीन से मिली अच्छी पैदावर से तीनों लड़कियों की शादियाँ शान-शौकत से की, देवेन्द्र को पढाया। लेकिन नौकरी न मिलने पर देवेन्द्र का दिमाग भी खेती-किसानी की ओर गया। एक-दो साल के अंदर देवेन्द्र ने परिवार की परंपरागत खेती का ढाँचा बदल दिया। बैल-बैलगाडी को बेचकर ट्रैक्टर और कृषि यंत्र खरीदा। आज के नौजवानों में परम्परागत खेती से विद्रोह है। वे खेतों से ज्यादा से ज्यादा आमदनी लेने के चक्कर में अन्य खाद्य-पदार्थों पर अपना ध्यान रखते हैं। चाँदी का कटोरा कहे जानेवाले विदर्भा में कपास का उत्पादन बडी मात्रा में था। लेकिन आज स्थिति इतनी बत्तर हो गयी कि इसीसे जुडे लोगों को चाँदी का कटोरा ज़हर का प्याला बन गया। कहानी का नायक देवेन्द्र के द्वारा कहानीकार ने इसी सत्य को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। देवेन्द्र से पहले गाँव में ग्यारह नौजवान भी आत्महत्या किए थे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा भारतीय कृषि व्यवस्था को उजाड़ने के कारण ही विदर्भ जैसे क्षेत्रों की दुरवस्था सब कहीं देखा जा सकता है। कंपनियों द्वारा प्रचरित नवीन कृषि रीतियाँ विशेषकर अधिक पैदावर मिलनेवाली फसलों के प्रयोग ने भारतीय कृषि परंपरा के ढाँचे को तोड़ दिया। इससे भारतीय किसानों को आर्थिक नुकसान के साथ अपना सब कुछ - ज़मीन, जायदाद, घर-परिवार और अन्त में जान भी गँवाना पडा।

दिनेश पालीवाल की कहानी *'कीटनाशक'* में किसानों की आत्महत्या और कपास की फसल की बर्बादी पर शोधकार्य हेतु जैसलमेर में आये एक प्राध्यापक के

---

[69] पुन्नी सिंह :- त्रास, समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्टोबर 2009, पृ. 71.

माध्यम से आज के किसानों की दारुण स्थिति को चित्रित किया है। जब प्राध्यापक का किसानों से भेंट हुई तब एक किसान उनसे पूछता है- " कीडों-मकोडों की जिन्दगी पर तो आप लोग खोज करते हैं साब..... हम किसानों की जिन्दगी जो कीडों-मकोडों से भी बदत्तर हो रही है उसका कोई इलाज क्यों नहीं खोजते साब...?"[70] प्राध्यापक का मित्र प्रताप जो गाँव का पूँजीपति है, खेतों का असल चित्रण देता है- " असल में इस इलाके में धान अच्छा होता है। किसान पहले धान की खेती करता था। धान की बजाय कपास करनी शुरू की क्योंकि बाहर दाम अच्छे मिलने लगे। बीज बाहर का मंगाने लगा। कीटनाशक भी मंगवाए। पर वास्तव में थे वे सब हानिकार कीटनाशक... जिन्हें बडे देश इस्तेमाल नहीं करते पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उन्हें बना रही हैं। महँगे कीटनाशक हमारे जैसे मरे-टूटे देशों को बेचे जा रहे हैं और हमारे बेवकूफ किसान उन्हें फसलों पर खूब छिड़क रहे हैं....। नतीजा हुआ सारी फसल कीड़े चट कर गए। कर्ज वसूलने केलिए सख्ती की तो कुछ लोग आत्महत्या केलिए वहीं कीटनाशक पीकर मर गए।"[71]

मोनसेन्टो, सिजेन्डा, कारगिल जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के 'जेनटिकलि मोडिफाइड' बीज और महंगे खाद से खेती करने केलिए किसान बैंकों या साहूकारों से कर्ज लेने को विवश होते हैं और बाद में अच्छे फसल न मिलने से आत्महत्या के बारे में सोचते हैं। साथ ही साथ ऋण वसूल करने केलिए साहूकारों, तथा बैंक के कर्मचारी हर दिन आकर धमकियाँ भी देते हैं तो बेचारा किसान एक ओर अपनी ज़मीन बेच देते हैं, दूसरी ओर आत्महत्या को चुनता है। *कैलाश बनवासी* की *'झुका हुआ गाँव'* में बैंक मैनेजर तथा तहसिलदार द्वारा लोन वसूल करने की प्रक्रिया का चित्रण है। इसमें एक नौजवान तहसिलदार से पूछता है –" सरकार क्या खाली मजदूर किसानों से कर्जा

---

70 दिनेश पालीवाल :- कीटनाशक , हंस, फरवरी 2003, पृ. 67

71 वहीं , पृ. 68.

वसूलना जानती है? और जो रोज दिन पेपर में छपता है बड़े-बड़े उद्योगपतियों और *धन्ना सेठों* के करोडों रुपए के सरकारी कर्जों के बारे में या बिजली बिल के बारे में, उसका क्या? वे तो करोडों डकार के बैठे हैं, और सरकार उनका कर्जा माफ कर रही है। और गरीब मजदूर किसानों से वसूल रही है।"[72] यह स्पष्ट है कि पूरे देश में कृषि उद्योग संकटग्रस्त है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारतीय बाज़ार में प्रवेश, सब्सीडी की कटौती आदि इस संकट को और अधिक विकराल कर दिया। फिर भी सरकार इस संक्रामक स्थिति से बचने केलिए कुछ भी नहीं करते हैं। कहानी में तहसिलदार यों कहते हैं – "इट्स नाट अवर रिस्पान्सिबिलिटि। वि आर डूइंग अवर ड्यूटी। अब जिसको मरना है मर जाए। हम क्या कर सकते हैं इसमें।"[73] सरकार की यही सोच किसानों की स्थिति को और अधिक बिगाड देगा।

खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी का एक और कारण हमारी युवा पीढ़ी में पनप रही परंपरागत खेती के प्रति विमुखता है। *'बाज़ार में रामधन'* कहानी का *मुन्ना* युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। किसान और खेती के प्रति लोगों की विमुखता जैसे वह आज की एक सच्चाई बन गई है *मुन्ना* में भी यह दृश्यमान है। धंधा करने केलिए वह अपने भाई रामधन से घर का रौनक बैलों को बेचने का प्रस्ताव रखता है। वह कहता है –" आखिर ये दिन भर यहाँ बेकार में बाँधे ही तो है। खेती-किसानी के दिन छोड़कर और कब काम आते हैं? यहाँ खा-खाकर मुट्टा रहे हैं ये।"[74] एक लंबे वक्त से बैल रामधन के और रामधन बैलों के सुख-दुख के साथी थे। बैलों को बेच डालने के दबाव से आखिर रामधन बार-बार पशु-मेले में जाता है, लेकिन मुँहमांगी कीमत न मिलने का कारण बताकर बैलों को घर वापस ले आता है। बाज़ारीकरण का असर युवा पीढी में पड़ गया है। वह अपने घर

---

72 कैलाश बनवासी :- झुका हुआ गाँव , नया ज्ञानोदय, अक्तूबर 2004, पृ. 97.

73 वहीं , पृ.

74 कैलाश बनवासी :- बाज़ार में रामधन , हंस 2006 अगस्त, पृ. 68.

के रौनक को बेचकर मशीन की ओर दौड रहा है। *मुन्ना* कहता है –" अरे यहाँ तो कितने ही ट्रैक्टरवाले हैं। उसे किराये से ले आएँगे। खेत जुतवाओ भिजवाओ और किराया देकर छुट्टी पाओं।"[75] लेकिन रामधन मेहनतकश पुरानी पीढी का प्रतिनिधि है। कहानी में रामधन जैसे गाँववालों के प्रतिरोध का स्वर मुखरित है तो बाज़ारवाद के चंगुल में फँसकर बैल जैसे अपने ही धन को पूँजीपतियों के हाथ सौंपनेवाले मुन्ना जैसे युवापीढी का भी चित्रण है। किसान का अपनी ज़मीन तथा पशुधन से जो गहरा संबन्ध है, बाज़ार की शक्तियाँ इस लगाव में सेंध लगाने की कोशिश कर रहा है। जौसे बैल-बैलगाडी के स्थान पर ट्रैक्टर, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किसानों से पट्टे पर ज़मीन लेकर उसे *फार्महाउस* में बदलकर खेती करने की शुरुआत। 'घाट' (GATT) समझौता, उदारीकरण, बाज़ारीकरण आदि तंत्रों के द्वारा इनकी ये कोशिशें सार्थक बन रही है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भरसक प्रयास एवं योजनाबद्ध तरीके के परिणाम स्वरूप हमारी कृषि अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव होने लगा।

4.3.2) कृषि अर्थ-व्यवस्था का पतन

कृषि और किसान भारत केलिए एक धंधा नहीं, एक संस्कृति है। यहाँ के अस्सी प्रतिशत लोग खेती और उससे संबंधित उद्योग धंधों से अपनी आजीविका चलाते हैं। औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण के साथ-साथ बाज़ारीकरण तथा शहरीकरण के फलस्वरूप आज किसानों की स्थिति बद-से-बदत्तर होने लगी।

शिवनाथ शुक्ल की कहानी 'रतनू कहाँ है'[76] में बैंक से ऋण लेकर खेती करनेवाले रतनू की जिन्दगी में अचानक हुई हादसा का चित्रण है। गाँव के पूँजीपति दीनूकाका की चालाकी में फँसे रतनू बैंक से ऋण लेकर अपने खेत में बोरिंग लगाता है।

---

75 वहीं पृ

76 शिवनाथ शुक्ल :- रतनू कहाँ है, अक्षरपर्व, जून 2009, पृ. 43.

लेकिन कुछ दिन बाद बोरिंग की चोरी होती है, साथ ही साथ माँ की तबीयत का खराब तथा फिर मृत्यु सब रतनू को दीनूकाका का भी कर्जदार बनाया। आखिर गरीबी, कर्ज, अपमान सब से मुक्ति केलिए रतनू अपनी पत्नी और दोनों बच्चों को ज़हर देकर आत्महत्या करता है। भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों ने साधारण जनता को बहुत कष्ट एवं दु:ख प्रदान किया है। यह स्पष्ट है कि उदारीकरण की नीतियों से किसान वर्ग की बड़ी आबादी तबाह हो रही है, फिर भी शासक वर्ग 'खुला बाज़ार' के नाम पर आम आदमी की सुविधाओं पर दस्तंदाज़ करके पूँजीपतियों एवं विदेशी कंपनियों के हितों को ही ध्यान में रखते हैं। सब्सीडी के क्षेत्र में इसका प्रतिफलन अधिक मात्रा में हुई है। विश्वबैंक और आइ.एम.एफ के निर्देशानुसार हमारे सरकार भारतीय किसान वर्ग को दिये जानेवाले सब्सीडी हटा रहे हैं। इसके फलस्वरूप देशी उत्पादन बरबादी में चलता है और विदेशी या बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने माल को मनमानी कीमतों पर बेचे जा रहे हैं। इस संदर्भ में किसान आर्थिक ऋण में फँसकर आत्महत्या करता है।

4.3.3) कृषि भूमि का अधिग्रहण

कृषि योग्य भूमि के व्यावसायिक उत्पादन केलिए अधिग्रहण भी किसानों की जिंदगी का अभिशाप बन गया। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उद्योग, शैक्षणिक संस्था, फ्लैट जैसी तैसी परियोजनाओं के बहाने किसानों की ज़मीन बडी मात्रा में हडप लेती हैं और इस अंधाधुंध लूट में सरकार भी पूर्ण सहायता प्रदान करती है। शहरीकरण एवं विकास का नाम कहकर भू-माफ़िया और विदेशी कंपनियाँ खेती-बाडी का उन्मूलन करके फैक्टरियाँ, फ्लैट आदि बना रही हैं। तदुपरान्त गाँव, बेकारी और गरीबी का शिकार बन जाता है। सरकार केवल विकास की ओर देखती है, याने औद्योगिक विकास।

विकास की नीति और राजनीति के बीच एक अटूट रिश्ता है। इसका पर्दाफ़ाश करनेवाली कहानी है *अरुण यादव* की *'जड़-ज़मीन'*। कहानी में देश के एक बडे

उद्योगपति के कार फैक्टरी केलिए गाँव की खेतीवाली ज़मीन सरकार ने अधिग्रहित करके उसे 'सेज़' के अंदर घोषित करता है। आज भारत सरकार ने अनेक ज़मीन 'सेज़' याने 'स्पेशल इकनोमिक ज़ोन' कहकर भू-अर्जन अधिनियम के तहत अधिग्रहित की गई है। ज़मीन के बदले किसानों को मुआवज़ा के रूप में मात्र हजारों रुपए देती है। कहानी में इसके विरुद्ध *रघुवीर* के नेतृत्व में गाँव वाले विधायक, बी.डी.ओ तथा जिला कलक्टर के पास जाते हैं, लेकिन वे सब हाथ धो बैठते हैं। कहानी का अन्त इतना मर्मस्पर्शी है कि जब बुल्डोज़र आकर फ़सल भरी खेत पर चलने को तैयार हुआ तो रघुवीर सहित गाँववाले विरोध करते हैं। पुलिस गोली चलाते हैं और रघुवीर सहित इक्कीस लोग मारे जाते हैं तथा अनेकों घायल हो जाते हैं। यहाँ विचार करने की बात यह है कि मात्र बीस प्रतिशत लोगों की सुविधा केलिए अस्सी प्रतिशत लोग शिकार होते हैं। हरे-भरे खेत, मवेशियों से संपन्न गाँव सरकार की आँखों में विकास का चिह्न नहीं है। 'विकास' उनकी राय में बड़े-बड़े कारखाने एवं कंक्रीटों से है। रघुवीर के स्वर में कहानीकार आज के ग्रामीण जनता का प्रतिशोध यों व्यक्त करते हैं –" हम तो कूडे का ढेर है साहब, कोई भी चाहे जब यहाँ से उठाकर वहाँ फेंक दें। हमारी जड़-ज़मीन कहाँ है।"[77] हम सभी को मालूम हैं नंदीग्राम का वह भयानक ऐतिहासिक हादसा, जहाँ किसानों के प्रति सरकार का दमन किस प्रकार था।

उसी प्रकार *मंगत बादल* की कहानी *'सबकी खैर'* में *रुद्रप्रताप सिंह* अपनी अमेरिकन कंपनी का एक पंचसितारा होटल केलिए राजस्थान के जैसलमेर गाँव आता है और वहाँ पच्चास-साठ एकड़ ज़मीन सरकार से पर्यटन की अपार संभावना के रूप में ले लेता है। वह अपने मित्र से कहता है –"भारत सरकार जब विदेशियों को व्यापार केलिए

---

77 अरुण यादव :- जड-जमीन, हंस, सितंबर 2009, पृष्ठ 54.

खुला आमंत्रण दे रही है तो ज़मीन भी देगी।"[78] *एस.आर.हरनोट* की *'मिट्टी के लोग'* कहानी में गाँव के चौधरी हरीसिंह का पुत्र सुमेर चौधरी विदेशी पढ़ाई के बाद जब गाँव लौटा तो वह बालदू को अपना कारोबार स्थापित करने केलिए धमकियाँ देते है कि " मेरे को घासणी चाहिए किसी भी कीमत पर। बोल कितने लाख दूँ तेरे को।"[79] यह सच है कि सरकार की नीतियाँ देश केलिए नहीं बल्कि विदेशी मुनाफाखोरों केलिए हैं। दरअसल अमेरिका आर्थिक सुधारों के नाम पर यहाँ अपना वर्चस्व बनाया रखना चाहता है। यह 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' या सेज से हमारी अर्थव्यवस्था का विकास नहीं, विनाश ही हो रहा है। *रमेश शर्मा* की *'शायद तुम उसे चाहने लगे थे'* कहानी में भी गाँव में बाँध बनाने केलिए गाँव को खाली करवाता है। ग्रामीणों को पुनर्वसित किया गया है। गाँववालों के सामूहिक विरोध के बावजूद कार्पोरेट वर्ग और प्रशासन ने मिलकर ग्रामीणों के घोंसलों को उजाड दिया और कस्बे के बाहर बनी झोंपडियों में उनके पुनर्वास की व्यवस्था कर दी। कहानीकार कहते हैं —" प्रेम, मोहब्बत, भाईचारा ये बातें कॉर्पोरेट वर्ग की डिक्शनरी में कहीं नहीं है। दैट्स आर ह्यूमन वीकनेस।"[80] मात्र कहानी की नायिका *गुलाबो* अंत तक गाँव को बचाने केलिए बाँध निर्माण का घोर विरोध की - "वह बाँध में डूब गयी ..... । अंत तक गाँव को डूबने से बचाने केलिए डटी रही।"[81] आज कॉर्पोरेट सेक्टर कोशिश कर रहा है कि ज़मीन, जंगल, खेती आदि पर उनकी कब्जा हो और सरकार इसके लिए कार्यरत है। 'शहर की मौत'[82] कहानी में सरकार चालीस वर्ष तक चाय की दूकान चलानेवाली चाची की दूकान और उसके आसपास की खाली ज़मीन

---

78 मंगत बादल :- सबकी खैर, समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल, 2009, पृ. 110.

79 एस.आर. हरनोट :- मिट्टी के लोग, नया ज्ञानोदय, मार्च 2009, पृ. 40.

80 रमेश शर्मा :- शायद तुम उसे चाहने लगे थे, अक्षरपर्व , अप्रैल 2006, पृ. 46

81 वहीं , पृ. 47.

82 प्रेम भारद्वाज :- शाहर की मौत , हंस, मई 2008, पृ. 32

एक बडे पूंजीपति को मॉल बनाने केलिए देती है। लेकिन चाची इसके प्रतिरोध में तनकर खडी रहती है। ज़मीन को खाली कराने केलिए जब बुलडोज़र आती है तब चाची बुलडोज़र के सामने तनकर खडी रहती है। जब पुलिस की लाठी से चाची लथपथ हो जाती है तब वहाँ के भीड भी चाची के साथ खडे रहते हैं। सरकार की अनैतिक भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध लोगों के प्रतिरोध एवं प्रतिशोध यहाँ देखा जा सकता है।

4.3.4) पारिस्थितिक असंतुलन

शहरीकरण और भोगवादी ज़िंदगी की लालसा से आदमी ज़मीन का दोहन कर रहा है। नतीजा यह हुआ कि प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ गया। कभी मूसलाधार वर्षा, कभी सिंचाई केलिए भी पानी का अभाव, अकाल जैसे प्राकृतिक विपदा से खेती बारी में नुकसान पहूँचाता है, ऊपर साहूकारों, बैंकों से लिए कर्ज भी तलवार के समान खड़ा है। *ऊर्मिला शिरीष* की कहानी *'कुर्की'*[83] इसकी ओर संकेत करनेवाली है। कहानी में अचानक हुई भारी वर्षा से सबकुछ खो गए एक नाना की जिंदगी का वर्णन करके गाँव की बेहाल की ओर हमें ले जाते हैं। अन्त में फसलों के नाश के साथ-साथ गले-गले तक कर्ज में डूबे नाना अपने बंजर पडी ज़मीन को समतल बनाने की कोशिश करते हैं।

4.3.5) कुटीर उद्योगों का पतन

दस-बीस सालों से वैश्वीकरण का जो दौर चल रहा है, इसके तहत बाज़ारवादी ताकतें हरेक क्षेत्र में चाहे व्यवसाय हो, राजनीति हो, उद्योग हो तथा आपसी संबंध हो सब कहीं घुसती जा रही है। उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति से लेकर बीसवीं सदी की कंप्यूटर क्रान्ति तथा इक्कीसवीं सदी के उपभोक्तावाद तक पहूँचते भारतीय समाज में से मजदूरों को कारखाने से निकालकर सर्विस सेंटरों एवं शो रूमों के कर्मचारियों एवं

---

[83] ऊर्मिला शिरीष :- कुर्की , समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर 2006, पृष्ठ 127

कुलियों में बदल दिया। इसके परिणामस्वरूप बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ, बहुमंजिला शोपिंग सेंटरें जनता के देशज तथा कुटीर उद्योगों को निगल रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत को जितना लूटा था, उससे हज़ारों गुना लूट स्वतंत्रता के बाद विदेशी कंपनियाँ कर रही हैं।

वर्तमान बाज़ारवाद परंपरागत लघु-कुटीर उद्योगों को रौंद दिया है। इसके कारण भारी मात्रा में ग्रामीण जनता बेकार हुई हैं और आजीविका चलाने में दिक्कत पहूँचाई। *कविता* की *'पत्थर, माटी, दूब'* इसकी ओर संकेत करनेवाली एक कहानी है। इसमें मूर्तिकार *गिरीश प्रजापति* की त्रासद जिंदगी का चित्रण करके कहानीकार आज के कुटीर उद्योगों पर हो रहे ह्रास पर विचार करता है। *गिरीश प्रजापति* एक ऐसे मूर्तिकार थे जिसका नाम दूर-दूर तक लोग जानते थे "त्योहारों का वक्त उनको साँस लेने तक की फुरसत नहीं होती। आम दिनों में भी ज़रूरत से अधिक काम।"[84] पर धीरे-धीरे वक्त अपना रूप बदलने लगा। औद्योगिक क्रांति से देशी उद्योग-धन्धे का विनाश तदुपरान्त महँगाई, गरीबी आदि अपने डैने पसारने लगी। " मिट्टी के खिलौनों की जगह प्लास्टिक और रबर के सस्ते, टिकाऊ,चाभी वाले आयातित खिलौनों से बाज़ार भरने लगे थे। खूबसूरत मछलियाँ-तितलियाँ, तोते, दुर्गा-काली के मुखौटे, किसी ड्राइंगरूम की शोभा बनने की बजाय घर के पिछवाडे बने स्टोर रूम में भर रहे थे।"[85] आज मशीनों से बनी हुई मूर्तियाँ और खिलौनों से भर गया है बाज़ार।

एस.आर. हरनोट की *'मिट्टी के लोग'* के कुम्हार मिट्टी के बर्तन की बिक्री में हुई गिराव के कारण अपनी पत्नी तथा दो बच्चों को ज़हर देकर आत्महत्या करता है। उसकी तरह मिट्टी के जितने बर्तन उसने बनाये, घर में धरे के धरे रह गये। बाज़ार में

---

84 कविता :- पत्थर, माटी, दूब , हंस, मई 2009, पृ. 32.

85 वहीं – पृ. 32.

मिट्टी के बदले अन्य बर्तनें इतना ज्यादा थे कि उनके बर्तन किसी ने नहीं खरीदा। "कुम्हार न अपना हुनर बेच पाया न ही बैंक की किश्तें समय पर दे सका बस अपने समेत पूरे परिवार को खत्म करने का ही रास्ता सूझा।"[86]

रामेश्वर प्रेम की *'दि बिज़नेस'* परंपरागत धंधों के विनाश के कारण बेरोजगार बन गये एक युवा की कहानी है, जिसे आजीविका केलिए अन्त में अमानवीय एवं अनैतिक धन्धा करना पडता है। कहानी का नायक सैमुअल फार्म हाउस का मैनेजर था, लेकिन फार्म हाउस को बिल्डर्स के हाथों बेचने के कारण वह आजीविका केलिए 'सेक्स बाज़ार' खोलता है- 'एण्ड ए बिज़नेस विदाउट कैपिटल'[87]। क्योंकि शहर में ऐसा धंधा अधिक लाभदायक है। उसके अनुसार –"वाइल्ड लाइफ के साहसिक पशु कारनामों से अधिक शहर में ऐसे खेल के जानवर मौजूद है।"[88] भूमण्डलीकरण से उपजे बाज़ारवाद के कारण हमारा देशी उद्योगों का ह्रास होने लगा और इससे नये अमानवीय धंधे पनपने लगे। 'लाभ-शुभ'[89] कहानी में सुबेदार को बाजारवाद एवं शहरीकरण के कारण अपने 'पान भंडार' को बंद करना पडता है।

नवउपनिवेशवादी प्रवृत्तियों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में विश्व के सभी बाज़ारों को विशेषकर विकासशील देशों के बाज़ारों को सौंप दिया है जिससे भारत जैसे विकासशील देशों के निजी एवं कुटीर उद्योगों को इन बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने ब्रांडों के ज़रिए निगल रही हैं। बाज़ार पर टिके रहने केलिए बडी कंपनियों की आर्थिक ताकत की ज़रूरत के साथ अब ब्रान्ड की आवश्यकता भी ज्यादा पडती है। सांस्कृतिक उद्योग में

---

86 एस.आर. हरनोट :- मिट्टी के लोग , नया ज्ञानादय, मार्च 2009, पृ. 42.

87 शमेश्वर प्रेम :- दि बिजनेस, हंस नवंबर 2003, पृ. 53

88 वहीं – पृ. 53

89 सुषमा मुनीद्र :- लाभ-शुभ, हंस, मार्च 2004. पृ.

ब्रांड ने एक महत्वपूर्ण पूँजी के रूप में प्रवेश किया। आज 'पेटेंट' की दुनिया है और सबकुछ विशेष नाम से बिक जाते हैं। इसी नाम पर टिके है बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ। आजकल हमारे देशी उत्पादनों को भी ब्रांडेड कर रहा है।

4.3.6) देशी उद्योगों का ह्रास

नव-उदारीकरण के लिहाजा विकासशील देशों को विश्वबैंक इन कायदे एवं नियमों के अनुसार ही उधार देती है कि वे अपने सरकारी एवं सहकारी क्षेत्रों के कर्मचारियों की कटौती करें और धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों को निजीकृत करें। *नीलंम शंकर* की *'अन्ततोगत्वा'* कहानी के पिता मनीष के द्वारा कहानीकार सरकार की इसी योजना का चित्रण करते हैं। कहानी में मनीष एक सरकारी कर्मचारी है और वह वी.आर.एस. लेना चाहता है - " वी.आर.एस तो एक तरीके से मर्यादित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति है। असलियत में यह छटनी का एक रूप। सरकार स्वयं को न अयोग्य साबित करना चाहती, न लांछन लेना चाहती। वॉलन्टरी रिटायरमेन्ट स्कीम सरकारी योजना।"[90] *हीरालाल नागर* की *'शंतनु दा की परछाई'*[91] में भी देशी अखबार से कर्मचारी लोगों की कटौती पर विचार किया है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को 'डायन' की संज्ञा देकर कहानीकार *शिवकुमार यादव* अपनी कहानी *'कई-कई शक्लोंवाले प्रेत'* में अपना विचार प्रकट करते हैं कि –" डायन पहले अपना घर उजाड़ती है, अपना पूत खाती है। फिर पडोसी और गाँव। मगर विकासशील देशों की डायन अपना पूत, अपना घर नहीं उजाडती। वह शक्ल बदलकर बाज बन जाती है और उस देश की ओर उडानें भरती है जिधर ख्यातिप्राप्त कल-

---

90 नीलम शंकर :- अन्ततोगत्वा , साक्षात्कार, फरवरी 2007, पृ. 40.

91 हीरालाल नागर :- शंतनु दा की परछाई , हंस, जून 2004, पृ. 60.

कारखाने हैं।"[92] प्रस्तुत कहानी में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त सूरज को परिस्थितियों ने गुण्डा बना दिया है। कहानी के द्वारा कहानीकार ने आज के देशी उद्योगों के पतन का ऐसा चित्र खींचा है कि इससे समाज में बढ़ रही 'क्राइम' के बारे में भी पाठकों को अवगत कराता है - " सरकार ने हुक्म ज़ारी कर दिया था कि घाटे में चल रहे सारे उद्योग-धन्धे बन्द कर दिये जाएँ। किसी भी कीमत पर पूँजी का इन्वेस्टमेंन्ट नहीं। आस-पास की दर्जनों कोइलरियों, पेपर-मिल और ग्लास फैक्ट्री को लाल यम ने छू लिया था।... एक तरफ छोटे-बडे उद्योग लाल कफन में सिमटते गये तो दूसरी तरफ क्राइम का ग्राफ आकाश छूने लगा।"[93] *संजय कुंदन* की कहानी *'कोई है'* का पात्र *पियूष* के माध्यम से कहानीकार आज के उद्योग क्षेत्र में हो रहे बदलाव को व्यक्त करते हैं –" यह लिबरलैसेशन हमें बरबाद करके छोडेगा। एक दिन ऐसा आयेगा जब हमारे लडके सिर्फ मुनीम बनकर रह जायेंगे। वे अमेरिका में बैठे किसी पूँजीपति का बहीखाता इंटरनेट के ज़रिए संभालेंगे। वह पूँजीपति जब चाहेगा उन्हें रखेगा, जब चाहेगा किक आउट कर देगा।"[94] आज की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ 'ट्रेंनिग' के बहाने युवाओं का चयन करती है और 'स्टैपेंट' के नाम पर कम वेतन देता है तथा निश्चित अवधि के बाद दूसरों को सेलेक्ट करती है और इस तरह यह प्रक्रिया जारी रखती है। इस रीति का प्रयोग आज-कल सरकारी दफतरों, शैक्षणिक संस्थाओं, रेलवे एवं परिवहन तथा अर्ध-सरकारी क्षेत्र में हो रहे हें।

भारतीय संस्कृति का आप्तवाक्य 'अतिथि देवो भव' हमारे परंपरागत उद्योग क्षेत्र में एक अभिशप्त वाक्य के रूप में बदल गया है। क्योंकि 'अतिथि' बनकर आयी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ 'वामन' बनकर लौट जाती है।

---

92 शिवकुमार यादव :- कई-कई शक्लोंवाले प्रेत , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2004, पृ. 67.

93 वहीं – पृ.71.

94 संजय कुंदन :- कोई है , हंस, दिसंबर 2003, पृ. 19.

4.4) पारिवारिक विघटन

भारत एक ऐसा देश है जहाँ परिवार को प्रमुख स्थान दिया जाता है। अतः भारतीय समाज का परिवार विश्व केलिए एक मिसाल बना हुआ है। लेकिन आज पारिवारिक रिश्तों में भी दरारें पड गयी है, वह टूट रहा है, बिखर रहा है। बदलती हुई परिस्थितियों ने संबन्धों के समीकरण को भी प्रभावित किया है। यह परिवर्तन पारिवारिक विघटन को तेज़ कर दिया है। यह पारिवारिक विघटन धीरे-धीरे सामाजिक मूल्यों के विघटन का कारण भी बन जाता है।

4.4.1) शिथिल होते पारिवारिक संबन्ध

परिवार को प्रमुख स्थान देकर चलनेवाले भारतीय भी पारिवारिक व्यवस्था के ऊपर पर्दा डालकर उसे अनदेखा करने का प्रयास कर रहे हैं। वह अधिकाधिक स्वार्थ एवं आत्मकेन्द्रित बन गया है। कमर बाँधकर पालन-पोषण करके बडे बने बच्चे अपनी माँ-बाप का तिरस्कार करते हैं। *कृष्णा अग्निहोत्री* की कहानी *'यह क्या जगह है दोस्तों'*[95] में यही चित्र मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। रात-दिन मेहनत करके अपने बच्चों को बिना कोई अभाव महसूस करके जीनेवाली एक विधवा माँ को बच्चे रसोई में अपने पसंद की खाना बनानेवालि, अपनी सुख सुविधा को बढ़ानेवाली, जब चाहे तब पैसा देनेवाली एक औरत मात्र मानते हैं –" बस दिन भर खानसामा बनी उनके लिए भोजन तैयार करें और मनपसंद खर्चे का बंदोबस्त हो यही उसके पद की गरिमा थी।"[96] जब माँ को 'अटैक' हुआ और अस्पताल में भर्ती किया तथा ऑपरेशन की सूचना बच्चों को दिया तब उनकी प्रतिक्रिया इतनी दर्दनाक है कि सारे बच्चों को कलंक देनेवाला है। वे कहते हैं–" अब माँ के पीछे हम तीनों का भविष्य तो मारा नहीं जा सकता। दवाई देते

---

95 कष्णा अग्निहोत्री :- यह क्या जगह है दोस्तों , हंस, फरवरी 2004, पृ. 17

96 वहीं, पृ. 20

रहेंगे, जितने दिन जिएँ जी ले, शेष हरि इच्छा।"[97] आज सबकुछ धन से तोला जाता है। धन लिप्सा पारिवारिक रिश्तों को तोडता है।

मधूसूदन साहा की *'रिश्तों के दायरें'*[98] के पिता अपने बेटे से ज्यादा पैसे से प्यार करता हैं। " वह जिंदगी भर दाँत से पैसों को पकडते-पकडते रिश्तों की पकड भूल गये थे। उनकेलिए पैसों की कीमत किसी की जान से ज्यादा थी।"[99] जब अपने बेटे नंदू की तबीयत बिगडने लगी और बहु अपने सारे गहनें बेचकर उन्हें शहर के अस्पताल में भर्ती कराया तब भी पिता पैसे के खर्च होने के भय से बेटे को देखने केलिए भी न जाता है। वे कहते हैं –"अरे, जिनको मरना है, वह तो मरेगा ही उसकेलिए व्यर्थ ही पैसा खर्च करने से क्या लाभ?"[100] आज मनुष्य की मनुष्यता, मानवीयता, रिश्तों की ऊष्मलता सब पैसे के आगे शिथिल पड जाती हैं। पैसे केलिए मनुष्य किसी भी रिश्ते को कहीं से भी तोडने को तैयार है। यह कहावत अब सौ प्रतिशत सही है कि " बाप बडौ न भैया, सबसे बडौ रुपैया।" आदमी अब मात्र धन का गुलाम बनकर रह जाता है।

उमेश अग्निहोत्री की *'बनियान'*[101] कहानी में माँ-बाप तथा बच्चों के बीच के संबन्धों में आये परिवर्तन एवं दूरियों को चित्रित किया है। कहानी में पिता अपने इकलौते युवा बेटे की शिकायत करता है कि वह उनसे बातें नहीं करता है, उल्टा जवाब देता है, उनके आदेशों एवं इच्छाओं के विपरीत कार्य करता है जैसा-तैसा। पिता रिश्तों में आयी दूरियों को सूचित करता है कि " जब वह छोटे थे, घर में कभी कोई विषय उठता था,

---

97 वहीं – पृ. 22.

98 मधुसूदन साहा :- रिश्तों के दायरें , भाषा, मई-जून 2010, पृ. 153

99 वहीं, पृ. 154

100 वहीं – पृ. 156.

101 उमेश अग्निहोत्री :- बनियान , वागर्थ, नवंबर 2010, पृ. 56.

विचारों का मजेदार आदान-प्रदान होता था। यह क्या ज़माना है? उनका बेटा किस किताब को खोल रहा है यह उन्हें समझ नहीं आता। यह कैसी पौध है? एक ही लक्ष्य... पैसा। किताबों से तो जैसे वैर है इस कौम को। हल्की फुल्की बातें करो, और हल्के-फुल्के अन्दाज़ में।"[102] पिताजी के द्वारा कहानीकार ने पारिवारिक व्यवहारों तथा मानव के संकुचित मनोभावों का सूक्ष्म वर्णन किया है। जब पिताजी बेटे के साथ बाहर निकलते हैं तथा उससे बातें करने की कोशिश करते हैं, जो नाकामयाब रह जाता है।

भूमण्डलीकरण से कामकाजी स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। आज आत्मनिर्भर बनने केलिए नारी विदेशों में भी नौकरी करने लगी हैं। *अमित तिवारी* की *'उसका नाम लीना है'*[103] कहानी में परिवार की भलाई केलिए विदेश जाकर नौकरी करनेवाली लीना की जिंदगी में होनेवाली त्रासद पारिवारिक टूटन का चित्रण हुआ है। दस साल तक अपने बच्चों तथा परिवार से अलग होकर अमरिका में अकेली जिंदगी बितानेवाली लीना ने सही अर्थों में विश्वग्राम की व्यावहारिक स्थिति का बोध परिवार को कराया। बच्चे अमरिका के ब्रांड कपडे पहनते हैं –"इनको माँ के प्यार से अधिक माँ का जमा किये डॉलरों में रुचि थे।"[104] धन कमानेवाली पत्नी और माँ के बजाय पति और बच्चों को धन से लगाव आज की कई परिवारों की एक विडंबनात्मक स्थिति है।

उपभोगवादी संस्कृति के प्रभाव से आज कई पारिवारिक संबन्धों में शिथिलता आयी है। टी.वी, संगणक, पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिए घर में बाज़ार घुस आया है और अपनी हरकतों से परिवार में दूरी बढ़ रही है। *अमरिक सिंह दीप* की कहानी *'एक कोई*

---

102 वहीं, पृ. 58.

103 अमित तिवारी :- उसका नाम लीना है , अभिव्यक्ति.हिंदी . 2007

104 वहीं, पृ.3

और'[105] में बाज़ारीकरण के कारण कलहित परिवार का चित्रण किया है। बाजारवाद के कारण भौतिक सुख-सुविधाओं की होड दीपू के पारिवारिक रिश्तों पर असन्तोष पैदा करता है। पति-पत्नी के बीच झगडा होती है। अपने रोजगार और पेशे से मिले वेतन से घर की बुनियादी जरूरतों को ही निपटने में असमर्थ दीपू पत्नी की भोग-विलास की वस्तुओं से कामना और अपमान से तंग आकर घर से दूर भागता है। *सीतेश आलोक* की *'दो घंटे'*[106] कहानी में भी भोग की लालसा से हुई परिवार की बर्बादी का चित्रण है। पति, पत्नी के बारे में कहती है " मैं कहीं मूँ दिखाने लायक नहीं रहा। बर्बाद कर दिया इसने.... सब कमा कर दिया इसे, पर जाने कितने साडी चाहिए इसको..... गहना चाहिए.... कहाँ से देगा मैं.... बर्बाद हो गया मैं....।"[107]

नीरज वर्मा की कहानी *'पार्टनर'*[108] में अजेश के माध्यम से कहानीकार यह दिखाते हैं कि आज मनुष्य नेटवर्किंग कंपनियों के जाल में उलझकर अपने बच्चे तथा परिवार को भी खो देता है। आज जल्दी से करोडपति बनने की लालच से मनुष्य अपने अंदर की भावनाओं को दूर रखकर मात्र बिजनस के बारे में सोचते हैं। इसी महत्वाकांक्षा की दौड में अजेश तेज़ बुखार से तडप अपने एक साल के मासूम बच्चे को समय पर दवा न दे सका, न डाक्टर को दिखाया। बच्चे को अस्पताल में भर्ती कराने में भी अजेश की मदद न मिला तो पत्नी *विनीता* मजबूरीवश अजेश की बिजनस पार्टनर *मि.के.के* की सहायता मांगी जो *विनीता* के भी अपने बिजनस का पार्टनर बनाना चाहता था। लेकिन बच्चे की रक्षा न कर पाया और विनिता को रोने केलिए के.के का कंधा ही मिला था। गाला काटा पैसे की दौड में मृत होती संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण कहानी में किया है।

---

105 अमरिक सिंह दीप :- एक कोई ओर , हंस, अगस्त 2001, पृ. 34.

106 सीतेश आलोक :- दो घंटे , समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी 2010

107 वहीं, पृ. 62

108 नीरज वर्मा :- पार्टनर, हंस, अक्तूबर 2009, पृ. 16

बाज़ार की नकली चमक ने न केवल रिश्तों तो तार-तार किया है वरना इस कहानी के मार्मिक अंत का कारण भी बन जाता है। उसी प्रकार *ललन तिवारी* की *'वे आ रहे है'*[109] कहानी भी मल्टीनैशनल नेटवर्किंग कंपनियों के जाल में फँसकर अपने पारिवारिक माहौल को बिगाडने की स्थिति तक पहूँचे मध्यवर्गीय परिवार की ओर इशारा करती है।

आज आदमी अपने उद्योग या नौकरी के वास्ते परिवार से दूर अलग रहता है। वह इतना व्यस्त है कि अपने परिवार से या नाते-रिश्तेदारों से मिलन भी असंभव हो गया है। इनके सिर पर सिर्फ काम की चिन्ता है, न रिश्ते या संबंधों को बरकरार रखने की। *अजरा नूर* की *'रिश्ते'*[110] कहानी की पत्नी कुन्तल अपने पति के इस रूक्ष आदत से बेहद चिढकर कहती है –" पिता और पति रिश्तों के नाम आप जरूर जानते हैं मगर रिश्तों की सार्थकता उन्हें निभाने में होती है यह नहीं मालूम है आपको। साथ रहते हैं आप मगर न दुख के साथी, न दर्द के.... सिर्फ जरूरत के साथी है आप। वह आदमी जो दूसरों की तकलीफ में आनंद महसूस करता है, वही है आप, सेडिस्ट। यह एहसास होगा उस दिन जब अकेले रह जायेंगे आप.... बिलकुल तन्हा..... अधूरे.... अधूरे.. क्या होता है दिल और क्या उसका दर्द... समझेंगे आप एक दिन।"[111]

उसी तरह *विश्वंभर त्रिपाठी* की *'लावास्ता'*[112] में आज के स्वार्थ मानव का सटीक वर्णन हुआ है। शहर में पत्नी और बेटे के साथ सुखमय जिंदगी बितानेवाले प्रदीप गाँव के अपने घरवालों या परिवारजनों से उपेक्षा का भाव रखता है। अपने ही भाई तथा दीदी को वह बोझ समझता है। कहानीकार कहते हैं –" सालों से प्रदीप एक ही

---

109 ललन तिवारी :- वे आ रहे हैं , अक्षरपर्व, अप्रैल 2006

110 अजरा नूर :- रिश्ते , भाषा, सितंबर-अक्तूबर, 2002,

111 वहीं ,पृ. 84.

112 विश्वंभर त्रिपाठी :- लावास्ता , कथादेश, नवंबर, 2008

मनस्थिति में रहते आये हैं। बिना किसी लगाव, दुख या सुन्ताप के सुखी आत्म संतुष्ट। हर संबन्ध से लावास्ता।"[113] चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानी 'मानबोध बाबू'[114] में एक रेल यात्रा के दौरान परिचय होनेवाले सहयात्री ओमप्रकाश से मानबोध बाबू अपनी पारिवारिक जिन्दगी की त्रासदी को बाँटता है। अपनी संपत्ती का बँटवारा करने का विरोध करने के कारण मानबोध बाबू से बेटे और बहुएँ कठोर व्यवहार करते हैं। आखिर मन-मारकर मानबोध बाबू घर से निकलकर पूरे भारत का पर्यटन कर रहा है।

आनंद बहादुर की *'साइनबोर्ड'*[115] कहानी में बाज़ारवाद के गिरफ्त में पडे पारिवारिक माहौल की छटपटाहट है। कहानी में कामताशंकर जी के घर में उनके बच्चे 'साइनबोर्ड' टाँगने चाहते हैं। लेकिन कामताशंकर उस महत्वाकांक्षी मकान को दुकान में परिवर्तित करने का विरोध करते हैं। कामताशंकर उर्फ बाबूजी को गाँव से माँ के बीमार पडने की खबर मिलने पर वह घर में साइनबोर्ड लगाने की अनिर्णीत युद्ध को बीच में ही छोडकर गाँव चला जाता है –" रात भर वे करवट बदलते रहे कई बार उठ-उठ कर घर की दीवारों, खिडकियों, पर्दों को छू-छूकर देखा। कल सुबह उठकर वे घर से बाहर सडक पर निकल आये और देर रात तक एकटक घर को निहारते रहे।"[116] उसे डर था कि उसकी गैरहाजिरी में मकान को बच्चे अपनी जरूरत का दुकाननुमा मकान बना डालेंगे। गाँव पहूँचकर वे यह निर्णय लेते हैं कि शेष काल गाँव में ही रहें। आज सब कहीं यह देखा जा सकता है कि लोग घर या अपने मकान को दूकान और दूकान को बाज़ार में तब्दील कर रहे हैं।

---

113 वहीं, पृ. 23.

114 चन्द्रकिशोर जायसवाल :- मानबोध बाबू, हंस, जनवरी 2006, पृ. 20

115 आनंद हर्षुल :- साइनबोर्ड , कथादेश, जून 2009

116 वहीं, पृ. 13.

कहानी *'मिठास'*[117] में मुकुल जोशी, बाज़ारीकरण के बाद संबन्धों में आये बदलाव का रेखांकन किया है। एक महीने की छुट्टी में गाँव पहूँचते जवान शिबिदत्त इक्कीसवीं सदी के शुरू में गाँव में आये परिवर्तनों को महसूस करता है –" हर आदमी अपने द्वीप बन चुके घर में बन्द, टीवी, मोबाइल आदि द्वारा दुनिया से जुडा परन्तु अपने आस-पडोस यहाँ तक की अपने घर के सदस्यों से भी कटा हुआ।"[118]

4.4.2) दांपत्य जीवन में दरार

परिवार की आधार शिला है दांपत्य जीवन। उनमें दरार पड जाती है तो पारिवारिक संबन्ध टूटने लगता है। आधुनिकता के पहले दौर में संयुक्त परिवार टूट गये और अब 'न्यूक्लियर परिवार' के पति, पत्नी तथा बच्चे तीन दिशाओं में बिखर रहा है। परिवार का यह टूटन आज आम बात हो गई है। स्त्री और पुरूष इसे एक चुनौती मानकर जिंदगी जी रहे हैं। आज तलाक के मामले इसलिए बढ रहे हैं कि औरतों ने ज्यादती बर्दाश्त करने से मना कर दिया है। स्त्री सशक्तीकरण के नाम पर जो बदलाव आ रहा है उसकी झलक सब कहीं देखी जा सकती है।

'संबंधों के दंश'[119] कहानी के द्वारा कहानीकार *अरुण प्रकाशढौंडियाल* कहता है- " परिवार में पति-पत्नी के झगडे अपनत्व की निशानी है। दोनों एक दूसरे पर हक जमाने केलिए किसी को भी अपने से बाहर नहीं चाहते। किसी दुसरे को अपने खास संबन्धों में शरीक होना पसंद नहीं करते ।"[120] लेकिन यह अपनत्व आज दांपत्य जीवन से गायब हो गया है। आज पति-पत्नी दोनों अपने व्यक्तिगत अहं पर जीना चाहते हैं। इसी

---

117 मुकु जोशी :- मिठास , कथादेश, जून 2007

118 वहीं, पृ. 53.

119 अरुण प्रकाश ढौंडियाल :- संबन्धों के दंश , समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी, 2003

120 वहीं, पृ. 76.

व्यक्तिगत 'अंह''कुल-जोड' कहानी के पारिवारिक बिखराव का कारण बन जाता है। आइ.ए.एस पति-पत्नी रिटायर होकर भी खाली नहीं बैठे। दोनों अपनी जिंदगी के रफ्तार को आगे चलाया। लेकिन इस रफ्तार में वे अपनी निजी जिंदगी को भूल गये। कहानी के पति याने 'पापा' अपनी बेटी से ममा के बारे में कहते हैं –" वह मेरे साथ कहाँ खडी होती है? आगे ही आगे निकल भागती है। वह यह भी भूल जाती है कि हम सबसे पहले मानव जीव है, हमें मानव स्पर्श की, मानव प्रेम की जरूरत रहती है।"[121] लेकिन गृहस्थी के तत्वावधान का स्वभाव दोनों अपने वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक वर्षों में खो चुके हैं। वर्तमान समय में पति हो या पत्नी गृहस्थी को दूसरा स्थान मानता है, वे नौकरी को ही प्रथम स्थान देते हैं। वैश्वीकरण के दौर में स्त्री अपने आपको केन्द्र में लाना चाहती है। वह भावात्मक संबन्धों को ठोकर मारकर 'पावर' और 'सत्ता' के पीछे लालायित है। कहानी में नौकरी से मिली प्रतिष्ठा 'मॉ' को गर्वीला कराती है। जब पति अपने 'निजी सैक्रटरी' को कार खरीद कर देता है तो भी वह कहती है –" सफल स्त्रीयों के पति ऐसी ही गरीब लडकियों को आगे बढाया करते हैं।"[122]

वर्तमान जीवन में मानवीय संबन्धों में सबसे अधिक परिवर्तन दांपत्य जीवन में नज़र आते है। आज विवाह या दांपत्य का आधार प्रेम, आस्था आदि नहीं रह गए हैं। वैवाहिक संबन्ध को एक सामाजिक समझौता या साथ-साथ रहने की आवश्यकता मात्र समझा जाता है। प्रसिद्ध कहानीकार स्वर्गीय राजेन्द्र यादव जी कहते हैं –" व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्ध में सबसे अधिक जटिल, नाटकीय और अनिवार्य संबन्ध स्त्री-पुरुष का आपसी संबन्ध है।"[123]

---

121 दीपक शर्मा :- कुलजोड , हंस, नवंबर 2009, पृ. 70.

122 वहीं – पृ. 71.

123 राजेन्द्र यादव :- कहानी - स्वरूप और संवेदना , वाणी प्रकाशन 2000, पृ. 207.

उसी प्रकार *सुशांत सुप्रिय* की कहानी *'प्यार'*[124] में परिवार से ज्यादा मॉडलिंग या कैरियर से शौक करके पति से तलाक लेनेवाली रोज़ी की कहानी है। नायक 'मैं' और 'रोज़ी' घरवालों के मना करने के बाद भी शादी करते हैं, लेकिन साल भर में ही सब तहस-नहस हो गया। "रोज़ी पर एक ही धुन सवार थी, मॉडलिंग करने की। जिस विज्ञापन एजेंसी में वह काम करती थी, वहाँ के बॉस चोपडा के साथ धुलने-मिलने लगी। एड-एजन्सी छोडने की बात पर वह कहती, उसे अपना कैरियर भी देखना है।"[125] सपनों की रंगीन दुनिया को आँखों में बसाकर घर से बाहर निकली स्त्री घर तथा घरवालों से ज्यादा उसी भोगप्रधान दुनिया को ही प्यार करती है, फलस्वरूप उनका पारिवारिक जीवन 'तलाक' में समाप्त होता है।

दांपत्य जीवन का आदर्श और वास्तविकता पहले से बहुत बदल चुकी है। बोद्धिकता के आगे धर्म और भावनायें विलुप्त होने के कगार पर हैं। महानगर की तेज भागदौड में पति-पत्नी एक दूसरे केलिए समय नहीं निकाल पाते, अतः वे भावनात्मक रूप से एक दूसरे से दूर होते चले जाते हैं। पति के प्रेम व ऊष्मा के अभाव ने नारी टूट कर बिखर जाती है। *नासिरा शर्मा* की *'दूसरा ताजमहल'*[126]इसी पर संकेत देनेवाली एक सशक्त कहानी है। नायिका *नयना* के पति एक जाने-माने डाक्टर है और वह इतना व्यस्त है कि कई दिन काम के वास्ते घर नहीं आ सकते। दोनों बेटे अमरिका में है। नयना को स्थिति की गंभीरता का ज्ञान था, मगर अपने अकेलेपन से वह ऊब चुकी है –"इंसान जिए कैसे इस अकेले घर में? कब तक टीवी देखे, मित्रों को फोन करे और पार्टियों में

---

124 सुशांत सुप्रिय :- प्यार , भाषा, जुलाई-अगस्त, 2003,

125 वहीं, पृ. 211.

126 नासिरा शर्मा :- दूसरा ताजमहल , हंस, दिसंबर 2001

शामिल हो? हर तरफ उसको ऊब लगने लगी थी। बच्चों के ई-मेल संदेशों और फोन पर उनकी आवाजें सुनकर वह खुश हो जाती थी।"[127]

आज के व्यस्त एवं भारी माहौल में एक छत के नीचे रहते हुए भी पति-पत्नी एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। कहानी में भी ऐसा ही हुआ कि सारे भौतिक सुख, प्रतिष्ठावाली परिवार, तथा स्वयं का ऊँची पद पर रहते हुए भी अपनी कुंठा, तनाव, उदासी एवं अकेलेपन से तडपती अधेड उम्र की स्त्री में किसी के दो मीठे वचन जिन्दगी में आयी उर्वरता को मिटाने में सक्षम होते हैं और यदि वह व्यक्ति एक आदमी है तो इसका अर्थ भी बदल जाता है। नयना के जीवन में भी रविभूषण का प्रवेश पारिवारिक जिन्दगी ही नहीं बल्कि उसकी मृत्यु का भी कारण बन जाता है। इस संदर्भ में डॉ. देवेच्छा का मत समीचीन होता है –" दांपत्य संबन्धों में तीसरे आदमी के आगमन का एक द्वार रहा है- संवेदना और सहानुभूति का। यह संबन्धों का मुख्य द्वार नहीं प्रत्युत घर की पिछली दीवार में चोरी-चोरी खुलनेवाला द्वार है। इसके खुलने की संभावना उसी क्षण बनने लगती है जब पति-पत्नी में से कोई एक स्वयं को निरंतर उपेक्षित मानने लगता है।"[128]

अखिलेश श्रीवास्तव चमन की *'खुलती राहें'*[129] कहानी में महेश शादी के बाद भी अपनी प्रेमिका के साथ रहता है। उसने सिर्फ अपनी माँ-बाप की इच्छा रखने और वंश-वृक्ष बढाने केलिए शांती से शादी की। महेश शांती से कहता है " तुम मेरे बच्चों की माँ तो बन सकती हो लेकिन मेरी पत्नी नहीं क्योंकि पत्नी का स्थान मैं पहले ही

---

127 वहीं, पृ. 16.

128 मायाप्रकाश पाण्डेय :- समकलीन साहित्य, बाज़ार और मीडिया , चिंतन प्रकाशन, कानपूर 2014, पृ. 94

129 अखिलेश श्रीवास्तव चमन :- खुलती राहें , साहित्य अमृत, अक्तूबर 2008

किसी और को दे चुका हूँ।"[130] बेचारी शांती को अपने मन की व्यथा को हल्का करने का भी सुविधा नहीं है। यदि ऐसा करती है तो परिवार तथा पति के मान-सम्मान में बदनामी आ जायेगी। बस अंदर ही अंदर घुलते रहने के सिवा और कोई चारा उसमें नहीं है। वर्तमान समय में विवाहेतर संबन्ध अतिसहज एवं अतिसामान्य हो गया है।

पद्मेश गुप्त की *'अस्वीकृति'*[131] में जिन्दगी की भागदौड में अकेली पड गयी पत्नी के मन में पूर्व प्रेमी की यादें तडपती है और वह अमरिका से भारत लौटती है तथा प्रेमी से संबन्ध भी रखती है। *अनीशा* अपने प्रेमी से कहती है –" अब मैं अपने शरीर, अपनी जिंदगी के साथ और खिलवाड नहीं होने देना चाहती। आइ एम फेडअप वित दिस हिप्पोक्रेसी। मेरा दम घुटता है तुम्हारे बिना। अमरिका की सारी चमक-दमक फीकी है तुम्हारे सानिध्य के आगे। मैं सबकुछ छोडकर तुम्हारे पास आ जाना चाहती हूँ।"[132] और वह अपने पति *राजीव* से सीधे कहती है –" अब मैं वापस आना नहीं चाहती। आई एम डाइवोसिंग यू।"[133] लेकिन प्रेमी *समीर* विवाहित प्रेमिका से शादी करने को हिचकता है और वह *अनीशा* से कहता है- " मैं तुम्हें अब पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी जिंदगी का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय हो तुम, लेकिन एक प्रेमिका के रूप में।"[134]

चित्रा मुदगल की *'मामला आगे बढ़ेगा अभी'*[135] कहानी में उच्चवर्ग की विलासितापूर्ण जिन्दगी के साथ दांपत्य में आये बिखराव का भी चित्रण है। कहानी में

---

130 वहीं, पृ. 36.

131 पद्मेश गुप्त :- अस्वीकृति , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008,

132 वहीं, पृ. 54.

133 वहीं – पृ.54

134 वहीं – पृ.54

135 चित्रा मुदगल :- मामला आगे बढेगा अभी , साक्षात्कार, मार्च 2007

मेमसाब अपने नौकर से कहती है –" मुझे तो बस कहने भर को घर मिला है। यह सारी मौज-मस्ती तो बस वक्त काटने की है। साब कहने को हसबैंड है और मैं कहलाने को बीवी। कभी कभी जो घर नहीं आते न। उसीके फ्लैट में रहते हैं। नयी गाड़ी खरीद के दी है उसे।"[136] उमा शुक्ला का कहना है कि " त्रिकोण में लटके स्त्री-पुरुष संबन्ध यानी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति से पति-पत्नी के संबन्धों में जटिलता आई है तो इससे परिवार टूट भी रहे हैं।"[137]

शिल्पी की *'मित्र'*[138] कहानी दांपत्य जीवन में संचार माध्यमों के दखल से आये बिखराव को दर्शाती है। कहानी में राकेश और शालिनी की जिन्दगी में व्योमेश का प्रवेश चैंटिग के ज़रिए होता है। शालिनी का अकेलापन भरे तथा शिथिल दांपत्य जीवन में चैटिंग नयी ऊर्जा देती है और वह अपने नीरस जीवन को रसमय बनाती है। वह व्योमेश से कहती है –" एक वक्त वो था जब हम जहाँ रुक जाते वही घर हो जाता। आज का वक्त घर जैसा दिखनेवाला एक ढाँचा है, दो बडे होते बच्चे हैं, गाडी, मोबाइल, ए.सी और लैपटॉप सभी कुछ है। अब हम एक दूसरे के सामने कम पडते हैं। जब पडते हैं तब नो कम्लैन का ढकोसला करते हुए आगे बढ जाते हैं।"[139] पति राकेश तो अपनी स्टैनो से अवैध संबन्ध रखते हैं। उनके मोबाइल में कई फोटोग्राफ्स ओर एस.एम.एस थे जो अपनी प्रेमिका से संबन्धित था। जब राकेश शालिनी के इस 'चैटिंग' के बारे में सवाल उठाता है तब शालिनी उनसे कहती है –" तुम्हें क्यों लगा कि अपनी शारीरिक और मानसिक जरूरतों केलिए तुम कहीं भी जा सकते हो और मैं खामोशी से तुम्हारी

---

136 वहीं, पृ. 31.

137 अस्मिता की पहचान :- भारतीय नारी , उमा शुक्ला, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली 2009, पृ. 31.

138 शिल्पी :- मित्र , नया ज्ञानोदय, मार्च 2009,

139 वहीं, पृ. 28.

कृपापात्र बनने की कोशिश और अपनी सारी इच्छाओं को कुचल देने के अलावा कोई विकल्प नहीं ढूँढ सकती।"[140]

उसी प्रकार *'कल फिर आना'*[141] *तेजेन्द्र शर्मा* की कहानी लंदन में एयरलाइन के अधिकारी कबीर तथा रीमा के दांपत्य जीवन के अधूरेपन को चित्रित किया है। दांपत्य जीवन की सफलता पति-पत्नी दोनों की यौन संतृप्ति पर निर्भर रहती है। यदि इसमें कोई कमी आ जाये तो एक ओर पारिवारिक संबन्धों में बिखराव पड जाता है तथा दूसरी ओर कोई तीसरे आदमी का प्रवेश भी होता है। कहानी में कबीर अपनी निजी सैक्रटरियों से यौन संबन्ध रखनेवाला था और घर आकर गहरी नींद सोता है और रीमा बेडरूम में अकेली तडपती रहती है। सालों तक यह रवैया चलता रहा। रीमा अपने पति को आकर्षित करने केलिए भिन्न-भिन्न ढंग से कोशिश की लेकिन वह असफल हो गयी। उसको समझ गया कि बात उसकी पहूँच से बाहर जा चुकी है। अकस्मात् एक दिन रीमा की जिन्दगी में नया मोड आता है। जब कबीर काम के वास्ते भारत गया तथा दोनों बच्चे स्कूल से ट्रिप केलिए निकले तब रीमा घर में अकेली पड गयी। वह रात उसके जीवन की सुखद पल था। रात में एक चोर घर में घुस आता है और वह रीमा की जिस्मी भूख को दूर करता है। "एक दशक के बाद रीमा को सेक्स का सुख मिल रहा था और वह उसका पूरा आनंद उठा रही थी। जब चोर वहाँ से निकलता है तब रीमा कहती है 'सुनो कल फिर आना'।"[142]

यौन अतृप्तियों को खुलकर प्रकट करने के वातावरण की सृष्टि आधुनिक संदर्भ ने दिया है। बाजारीकरण के इस युग में जहाँ सब कुछ उपलब्ध है वहाँ शारीरिक या यौन

---

140 वहीं – पृ. 29.

141 तेजेन्द्र शर्मा :- कल फिर आना , हंस, जनवरी 2010

142 वहीं , पृ. 22.

सुख भी खरीदा या भोगा जा सकता है। रीमा अपने पति से कहती है " जिस तरह पेट को भूख लगती है जिस्म को भी वैसे ही भूख महसूस होती है। वैसे पेट की भूख शांत करने के तो कई तरीके हैं। मगर जिस्म....।"[143] *ज़कीया जुबैरी* की *'बस एक कदम'*[144] में भी अतृप्त वासनाओं से तडप रही नलिनी आखिर अपनी जिस्मी भूख को शांत करने केलिए विधु के पास जाती है।

उमेश अग्निहोत्री की *'क्या हम दोस्त नहीं रह सकते'*[145] में प्रेमविवाह किये जय-विजया की जिन्दगी में अमरिका के 'गर्ल्स नाइट आउट' एक प्रतियोगी के रूप में आता है। अधिकतर शादियों के समान एक-दो साल बाद उनके प्यार में भी जवानी के उबाल-उछाल की जगह परिपक्वता ले ली तथा गांभीर्य अधिक आया। विजय अपनी सहेलियों के साथ 'गर्ल्स नाइट आउट' जाने का इरादा प्रकट करती है। लेकिन जय 'गर्ल्स नाइट आउट' के घार विरोधी था। उसकी राय में अमरिका में पारिवारिक जीवन की यदि कोई चीज़ सबसे बड़ी दुश्मन है तो वह है 'गर्ल्स नाइट आउट'। मतलब अपने बच्चों को पतियों के सुपुर्द कर महिलाओं द्वारा किसी रेस्त्रां में आयोजित गप्प-गोष्ठी। वह उसे मना करता है –" हम शादीशुदा हैं। हमें ऐसे लोगों को दोस्त बनाना चाहिए जो घर गृहस्थी की अहमियत समझते हो, शालीन सुसंस्कृत हो। अगर ऐसे लोगों के बीच उठे-बैठेंगे तो हम अपने बच्चों को क्या वाल्यूज़ देंगे।"[146] फिर भी विजया 'गर्ल्स नाइट आउट' जाती है। आज की लड़की अपने पति में दोस्त का भी रूप देखना चाहती है। शादी के बाद भी वह अपनी आज़ादी का भरपूर आस्वादन करना चाहती है। विजया अपने पति से कहती

---

143 वहीं – पृ. 17

144 ज़कीया जुबैरी :- बस एक कदम , हंस, जनवरी 2010

145 उमेश अग्निहोत्री :- क्या हम दोस्त नही रह सकते , नया ज्ञानोदय , अगस्त 2006

146 वहींपृ. 27.

है –" तुम्हें मालूम है कि जब तुम दोस्त थे तुम्हारी किस बात ने मुझे तुम्हारी तरफ सबसे अधिक आकर्षित किया था। तुम इतने पोज़ैसिव नहीं थे जितने अब हो रहे हो। तुमने जितने भी लड़कों से मिलवाया था, वे अधिक हैण्डसम तो थे, लेकिन वे मेरी जिन्दगी का रिमोट अपने हाथ में रखना चाहते थे। मेरी मूवमेंट्स को मैनेज करना चाहते थे। कोई भी मुझे मेरी अज़ादी देने केलिए तैयार न था। तुम मुझे अधिक संवेदनशील और उदार जान पडे थे। मुझे मेरी आज़ादी देते थे। वह आज़ादी अब भी दे पाओगे?"[147]

निरुपमा श्रीवास्तव की *'बीवी का सब्स्टीट्यूट'*[148] में भारतीय खाद्य निगम के लेखा अधिकारी बने रमाकांत शर्मा अपनी अफसरी आदत से पत्नी और बच्चों को भी कष्ट देते हैं। वह अपने बीवी-बच्चों को दफ्तर के अधीनस्थ कर्मचारी सा मानकर बर्ताव करता है। जब पत्नी तथा बच्चे घर के दफ्तरी माहौल से बाहर निकलकर आज़ादी का चैन लेने के मौके के रूप में ननिहाल जाने की इच्छा प्रकट की तब शर्मा जी अपनी पत्नी से सब्स्टीट्यूट को रखकर जाने को कहा। तब पत्नी झल्ला पड़ती है –" अरे, घर..घर होता है दफ्तर नहीं, जो आप बीवी का सब्स्टीट्यूट माँग रहे हैं।"[149] पत्नी न हारा, वह एक रोबोट को खरीदकर अपने पतिदेव की पूरी दिनचर्या की प्रोग्रामिंग कर अपने विकल्प के रूप में आनन-फानन तैयार किया, और मायके चली गई। अब तक वह अपने को 'रोबोट' मानती थी जो पति के इशारे से चलते हैं। एक-दो दिन आनंद एवं शान्ती से गुजरे शर्माजी अपनी पत्नी की बुद्धिमत्ता पर विमुग्ध हो गये। लेकिन तीन चार दिनों के बाद उसे बोर होने लगा, किसी से दो शब्द बोलने को तरस हुए। उनकी

147 वहीं – पृ. 29.

148 निरूपमा श्रीवास्तव :- बीवी का सब्सिटट्यूट , भाषा, जनवरी-फरवरी 2007

149 निरूपमा श्रीवास्तव :- बीवी का सब्सिटट्यूट , भाषा, जनवरी-फरवरी 2007, पृ. 131.

अफ़सरी रौब धीरे-धीरे धूमिल पडने लगा और अपनेइस अकेलेपन को दूर होने केलिए ससुराल चला जाता है।

कहानी *'वे दोनों'*[150] में *राजेश झुरपुरे* पति-पत्नी का चित्रण ऐसा प्रस्तुत किया है- " समझौते की आदिम संस्कृति उस मकान में रहती है, जिसे सब उनका घर कहते हैं। इस नयी संस्कृति में वे एक दूसरे से चिर-परिचित, एक ही घर में रह रहे अजनबी जैसे हैं। उनका अजनबीपन उनके सिवाय और कोई नहीं जानता है।"[151]

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार दांपत्य जीवन के बारे में अपना विचार यों प्रकट करता है –" दांपत्य जीवन है....प्रेम का, प्यार का, आस्था का, विश्वास का, सहयोग का, साथ-साथ चलने का। यह जीवन घसीटने का नहीं, अवरोध या अडचन पैदा करने का नहीं और न ही उदरपूर्ती केलिए किसी स्त्री या पुरुष का हाथ थामने का नाम है। यह जीवन बहुत ही महीन धागों से बुना सिर्फ प्यार का रिश्ता होता है।"[152] लेकिन वर्तमान संदर्भ में जो कुछ भी देखा जा रहा है वह ऊपर कही गयी बातों के ठीक विपरीत है, जो बदली हुई संस्कृति का परिदृश्य है।

दांपत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच के अलगाव के बारे में *पुष्पपाल सिंह* का मानना है कि " यह अलगाव, असन्तोष और संबंधों की दरकन किसी तीसरे की उपस्थिति के कारण है तो कहीं दूसरे पर व्यर्थ शक से, कहीं पति को संपूर्णता से पाने की ललक को लेकर है तो कहीं सामान्य नारी के स्तर पर जीवन जीकर पति का संपूर्ण प्रेम प्राप्त करने की उत्कट कामना से कहीं यह काम संबंधों की अतृप्ति के कारण है तो कहीं यह दांपत्य के एक सरीन में बन्ध जाने और चौके-चूल्हे तथा बच्चों के किच-किच

---

150 राजेश झरपुरे :- वे दोनों ,कथादेश, अक्तूबर 2008, पृ. 40.

151 वहीं, पृ. 40.

152 वहीं – पृ. 41.

में फँसे रहकर जीवन के नीरस हो जाने से, कहीं पति द्वारा न समझे जाने की अनाम और अकूल पीडा है तो कही अर्थतंत्र के विषधर की फूंकार से जीवन पर निराशा की कालिमा को मॅडराने से उसका असन्तोष है।"[153]

4.4.3) पारिवारिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास

समसामायिक कहानी जीवन के यथार्थ को अत्यंत गहराई से चित्रित करती हुई आगे बढ रही है। इस संदर्भ में व्यक्ति संबन्धों में आये दरार एवं पारिवारिक रिश्तों में आये मूल्य शोषण को अनदेखा नहीं किया जा सकता। क्योंकि समाज के एक अभिन्न अंग है परिवार। टूटते पारिवारिक रिश्तों तथा उससे उत्पन्न हिंसा और अनैतिक प्रवृत्तियों का असर सामाजिक जीवन में भी प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक है। समसामयिक कहानियों में कहानीकारों ने टूटते पारिवारिक संबन्धों एवं उत्पीडनों के विभिन्न स्तरों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

घरेलू हिंसा का सबसे क्रूरतम चेहरा है घरों में लडकियॉ मानसिक, शारिरिक शोषण के साथ-साथ यौन शोषण का भी शिकार बनना। यहाँ पारिवारिक एवं वैयक्तिक नैतिक मूल्यों का विध्वंस स्पष्टतया परिलक्षित हो रहा है। अजय नावरिया की 'ढाई आखर'[154], विभा देवसरे की 'अनमेल'[155], कविता का 'देहदंश'[156] आदि कहानियों में पिता द्वारा बेटियों के बलात्कार का चित्रण है। इन कहानियों के पिता या तो अकेलेपन के कारण या बदला लेने केलिए बलात्कार करता है। उसीप्रकार 'लडकियोंवाला घर'[157]

---

153 एन.एम.सण्णी, ई.एम. अन्नासाली :- हिंदी कहानी के सौ वर्ष , जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2008, पृ. 135.

154 अजय नावरिया :- ढ़ाई आखर , हंस, सितंबर 2004, पृ. 52.

155 विभा देवसरे :- अनमेल , साहित्य अमृत, अगस्त 2007.

156 कविता :- देहदंश , हंस, सितंबर 2004, पृ. 63.

157 नवीन कुमार :- लडकियों वाला घर, कथादेश, अगस्त 2004, पृ. 74.

कहानी में ईनू (अंजना) के साथ उसके ममेरे जीजा, 'पापा तुम्हारे भाई'[158] कहानी में अनीता के साथ उसके चाचा यौन शोषण करता है। आज पुरुष अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ती केलिए शिशुओं या मासूम बालिकाओं को भी नहीं छोड़ते हैं। आजकल के अखबार के नियमित समाचार के रूप में यौन पीडन का चित्रण देख सकता है उनमें केवल महीने भर की बच्ची भी शिकारग्रस्त है। संजीव चन्दन की कहानी 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाम'[159] में तीन साल की 'आर्ची' को दो चाचाओं के यौन आक्रमण के खौफनाक पीडा से गुजरना पडा। इन सभी कहानियों को परखने से ऐसा महसूस हुआ कि पिता-पुत्री का पवित्र रिश्ता भूलकर मात्र पुरुष-स्त्री का रिश्ता है, जिसमें स्वयं को तृप्त करने केलिए या अपनी भूख मिटाने केलिए सारी गलीज भूमिका पुरुष निभा रहा है। वह आज इतना संवेदनाशून्य हो गया कि उसे अपनी बेटी की जगह मांस का लोथडा नज़र आता है। कहानियाँ आज के कुछ कामांध, लंपट और पशुवत् 'पापाओं', 'चाचाओं' की पोल खोलती है, जो दारु के नशे में ऐसा घृणित कार्य कर रहे हैं। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाम' की मन्नू पूरे पूरुषवर्ग को मनोरोगि मानती है। वह कहती है –" पूरा पुरुषवर्ग मनोरोगि है, लाइलाज मनोरोगी। क्या सोचा होगा इन चाचाओं ने? छोटी-सी अबोध बच्ची के साथ वे क्या कर पाते...? अरे यह तो पुरुषों की अदम्य लालसा है, स्त्रीयों को नंगी देखने की, कभी बच्चा बना दिये जाने पर और कभी बाज या चाचा बनकर, द मेल सोसाइटीइज़ सेक्सूअली फरवर्ड।"[160]

4.5) लिविंग टुगेदर या लिव इन रिलेशनशिप

158 शिल्पी :- पापा तुम्हारे भाई, हंस, नवंबर 2004, पृ. 36

159 संजीव चन्दन :-द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाम , कथादेश, जुलाई 2004, पृ. 84.

160 वहीं – पृ.86.

वर्तमान समय में युवा पीढ़ी किसी प्रकार के ज़िम्मेदारी को कन्धे पर उठाना नहीं चाहती। आज स्त्री हो या पुरुष शादी को या बच्चा पैदा करने को झंझट मानते हैं। वे एक उन्मुक्त स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती हैं। भारतीय समाज में भी 'लिविंग टु गेदर' या 'लिव इन रिलेशनशिप' की सोच आज बढ़ने लगी है। इस 'रिलेशन' में स्त्री और पुरुष मात्र समझौते के आधार पर एक दूसरे के साथ रहता है। इन लोगों का न घर से निकलने का कोई समय है, और न घर में घुसने का। एक ही छत के नीचे रहकर भी अपनी मर्जी से जीते हैं। 'वैश्वीकरण और संस्कृति का संकट' लेख में अमलदार नीहार ने ऐसा कहा है "लिव इन रिलेशनशिप एक ऐसी प्रवृत्ति है जो साहचर्य, सौहार्द और संवेदनापूर्ण सह-अस्तित्व की भावना के अभाव में पैदा हो रही हैं।"[161]

रजनी दिसोदिया की *'घर-परिवार'* कहानी का पात्र *अनन्या* और *आलोक* दिल्ली में 'लिव इन रिलेशन' में रहते हैं। वे दोनों शादी नामक धागे में अपने को बांधना नहीं चाहते हैं। *अनन्या* कहती है- " शादी में संबंध नेचुरल और फ्रेश नहीं रह पाता। विवाह में दोनों पारस्परिक सूरतों को एक दूसरे पर लाद देते हैं और जीवन भी उससे मुक्त नहीं हो पाते।"[162]इस कहानी की लेखिका *रजनी दिसोदिया* की राय में- " शादी और फिर बच्चे दोनों से ही मुक्ति का नाम है लिव इन रिलेशनशिप।"[163]

लिव इन रिलेशनशिप भोग और मस्ती की जीवन शैली में ही विश्वास रखता है। आज जिंदगी का अर्थ भी भोग या आनंद ही है। *'इसतरह से सबकुछ'* (लेखिका-*जयंती*)की नायिका *'मैं'* साढे तीन सालों से *नागेश* के साथ बिना शादी किये अमरिका में

---

161 अमलदार नीहार - वैश्वीकरण और संस्कति का संकट, वर्तमान साहित्य, जून 2012, पृ. 26.

162 रजनी दिसोदिया :- घर-परिवार , हंस, नवंबर 2009, पृ. 106.

163 वहीं – पृ. 111.

रह रही थी। लेकिन जब वे भारत वापस लौटा तब पारिवारिक एवं सामाजिक दबाव के कारण *'मैं'* ने *नागेश* से शादी का प्रस्ताव रखा। लेकिन *नागेश* साफ कहता है- " मैं शादी जैसे स्टुपिड बन्धन में नहीं बंधना चाहता।"[164] *नागेश* अपने मित्रों या रिश्तेदारों से बिना किसी संकोच से उसका परिचय करवाता है कि " शी इस माई लिव इन पार्टनर।"[165] जब *नागेश* उसे छोडता है तब उसका कसिन राजू 'मैं' के साथ रहता है। 'लिविंग टु गेदर' में किसी तरह के 'इमोशनल फीलिंग्स'नहीं होते हैं। *'15वीं मंजिल का सफर'*[166]की नायिका *'वह'* सारे ज़माने से टकरा कर घर-परिवार के विरोध को नज़र-अंदाज करके शादीशुदा देव के साथ दस साल से लिव इन रिलेशन में रह रही है। देव के साथ लिविंग टु गेदर में रहकर भी वह हरीश देसाई के साथ दोस्ती एवं हमबिस्तर भी करती है। यौन सुख के आगे हर अंकुश को हाशिए पर रखकर चलनेवाली नारी पारिवारिक, सामाजिक, वैवाहिक, भावनात्मक संबंधों को तिलांजलि देकर मुक्ति के द्वार के रूप में 'लिविंग टु गेदर' को अपनाती है। *'कस्तूरीगंध'*[167] में *प्रज्ञा* और *दीपंकर* कुल गोत्र, जाति के बंधन से मुक्त पारिवारिक एवं सामाजिक झंझटों से अलग रहकर अपनी एक अलग जिन्दगी बिताते हैं। *कविता* की *'मेरी नाप के कपड़े'*[168] कहानी में पात्र *रवि* और मुख्य पात्र *'मैं'* भी इस तरह की ज़िन्दगी बिताते हैं।

महानगरीय जीवन की विसंगति होते हुए भी 'लिविंग टु गेदर' को प्रोत्साहन मिल रहा है। क्योंकि आज की युवा पीढ़ी नौकरी केलिए शहरों या महानगरों में रहती हैं। नये शहर में अपनी जिस्मी भूख, स्वयं की रक्षा तथा असीम ख़र्च और सीमित आय से जूंझने

---

164 जयंती :- इस तरह से सबकुछ , हंस, फरवरी 2001, पृ. 52.

165 वहीं – पृ. 52

166 भाषा सिंह - 15वीं मंज़िल का सफर, हंस, अगस्त 2009, पृ. 38

167 पूनम सिंह :- कस्तूरी गंध, हंस, जून 2003, पृ. 42

168 कविता :- मेरी नाम के कपड़े, हंस, फरवरी 2004, पृ. 52

केलिए भी 'लिव इन पार्टनर' को अपनाती है। *'प्रदूषण'*[169] कहानी की नायिका *रचना* दिल्ली के एक बडे दफ्तर की नौकरीपेशा युवती है। वह अपने मकान के बड़ी किराये से मुक्त होने केलिए अपने प्रेमी *अनिर्बान* को भी साथ रखने का फैसला करती है। "इस नई मिली शांती और संपूर्ण किराये का बोझ सिर से उतर जाने पर वह सन्तुष्ट होने लगी।"[170]

विवाह, रिश्ता आदि का मूल्य अब नष्ट हो रहा है। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव हमारे जीवन शैली में भी दिखाई देता है। आज की युवा पीढ़ी 'यूस एंड थ्रो' में विश्वास रखती है। जब चाहे संबंध रखो और जब ऊब जाते अलग हो जाओ। यही सोच आज बढ़ती जा रही है। *संजीव-चंदन* की कहानी *'द्वा सुपर्णा सयुजा रखायाम'*[171] में *मन्नू , ऋषभ* के साथ विवाह की 'रस्मी औपचारिकता' निभाये बिना " सहजीवन केलिए बनायी अपनी ही शर्तों के बीच रहती है कि दोनों की जिंदगी अपनी होगी, कि कोई किसी की राह में दखलंदाजी, सहानुभूति या प्रेमवश भी नहीं करेगा, एवरी वन विल बी फ्री टू लिव वन्स ओन एडवेंचर।"[172]

4.6) घर से प्रस्थान और वृद्ध सदन में सहारा

इस सृष्टि में मानव ही एक ऐसा जीव है जो आपसी संबंध, रिश्ते, परिवार, रिश्तेदारी, पालन-पोषण आदि पर बहुत अधिक ध्यान देता है। अन्य जीवों में जब एक बच्चा पैदा होता है तो उसे जीवित रहने केलिए अनेकों चुनौतियों से गुज़रना पडता है। उसे माता-पिता के संरक्षण में बहुत कम समय तक ही रहना नसीब होता है। वह अपने

---

169 पंखूरी सिंहा :- प्रदूषण , हंस, नवंबर 2004 पृ. 43.

170 वहीं, पृ. 46.

171 संजीव चन्दन :- द्वा सुपर्णा सयुजा रखायाम , कथादेश, जूलाई 2004, पृ. 84.

172 वहीं, पृ. 84.

परिवार से जल्द ही स्वतंत्र हो जाता है। लेकिन हम मनुष्य ऐसा नहीं है। हम जन्म से लेकर मृत्यु तक परस्पर आश्रित हैं। बच्चे, माँ-बाप पर और वृद्ध माँ-बाप अपने बच्चों पर आश्रित है। इसी लिए माता-पिता और संतान का संबंध अटूट और अनोखी होती है। वर्तमान संदर्भ में इस जननी-जनक और उत्तराधिकारी के संबंधों में दरारें पडने लगे हैं। बदलते सामाजिक संदर्भों ने युवा और वृद्ध जनों के संबंधों में कलह पैदा किया है। माता-पिता अपने बच्चों को अनेक चुनौतियों के बीच पाल-पोसकर बडा करता है और अंत में वहीं माता-पिता बेसहारा बन जाते हैं। इन वृद्ध जनों को बोझ समझकर बच्चे उन्हें बेसहारा छोड देता है या तेजी से उभरते हुए वृद्धाश्रमों या ओल्ड एज होम में भरती करा देते हैं।

आधुनिक युग की एक ज्वलंत समस्या है वृद्धावस्था या बुढापा। नवीन चिकित्सा शास्त्र एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मनुष्य की आयु को बढा दिया है। मानव राशी के प्रगति और विकास ने जन्म-दर में बढौती तथा मृत्यु-दर में कमी लायी है। इससे वृद्ध जनों की संख्या एवं समस्याएँ बढी है। वृद्ध जनों की समस्याओं को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। 1) शारीरिक, 2) मानसिक। शारीरिक समस्याओं के मुकाबले मानसिक समस्याएँ संकीर्ण है। वृद्धावस्था की मानसिक समस्याओं का जड पारिवारिक संबंधों में आए बिखराव एवं दरारे ही हैं। पारिवारिक संबंधों में जो क्लेश पैदा हुआ है उसका कारण बदलते जीवन मूल्यों एवं रीतियाँ हो सकती हैं। जीवन मूल्यों और रीतियों में परिवर्तन आधुनिक युग की प्रवृत्ति ही हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, लेकिन आज वह समाज, सगे-संबंधों एवं परिवार जनों से बाहर निकल कर खुद अपने में ही समाया जा रहा है। इन समस्याओं पर समाज में आशंकाएँ एवं चर्चा हो रही है। हिंदी साहित्य जगत में भी वृद्धावस्था या बुढापे पर सक्रिय रूप से आशय-विनिमय हो रहा है। विशेषकर हिंदी कथा साहित्य में अनेकों रचनाएँ उपलब्ध है जिसका मुख्य विषय वृद्धावस्था और इससे संबंधित समस्याएँ है।

आज लोग अपने-अपने स्वार्थ पूर्ती केलिए प्रयत्नशील है। लोगों में नकली एवं कृत्रिम मूल्यों का बढावा हो रहा है। *देवेन्द्र सिंह* की *'भरोसा'*[173] कहानी में अपने बूढे एवं खाट पर पडे पिता को देखने केलिए शहर से आये दिलीप का अपने पिता के प्रति उपेक्षा भाव का चित्रण है। पिता की बेहालत का सन्देश सुनने के बाद भी वह आराम से घर जाता है, खाता-पीता है। उसके भीतर सुख और आराम की जिन्दगी ही प्रमुख है। इसी वजह से वह अपने पिताजी के इलाज केलिए पैसा दिए बिना वापस लौटता है। घर आकर वह अपनी पत्नी से कहता है – कितना होशियार समझते है सब लोग अपने को। कहो, तो हम वह मुरदा ढोकर यहाँ ले आते।"[174]"अब जिन्दा रहने केलिए आदमी का थोडा-सा नीच, थोडा सा बेईमान होना जरूरी है।"[175]

वर्तमान पीढी केलिए अपना फायदा और सुख-सुविधायें ही प्रमुख है। इसकेलिए वे अपने माँ-बाप को घर से निकाल भी देते है। *सुरेन्द्र तिवारी* की *'अवरोधक'*[176] कहानी का पात्र प्रोफेसर *कुलवीर वर्मा*, काहनी के मुख्य पात्र 'मैं' से कहते हैं- "धन आवश्यक है किंतु अतिरिक्त धन व्यक्ति के सारे संबन्धों को समाप्त कर देता है। मनुष्य की संवेदनाओं को नष्ट कर देता है, मनुष्यत्व को गड्ढे में दबा देता है। इस अर्थप्रधान युग में रिश्तों के सूत्र, रिश्तों के मूल्य सिर्फ अर्थ से जुडे हैं।"[177]अर्थ के प्रति अधिक लालसा से कुलवीर वर्मा बेटों द्वारा ठुकराया हुआ एक निस्सहाय पिता बन जाता है। जब बेटों को अपनी ऐश जिन्दगी में पिता रोडा बन जाता है तथा बोझ होने लगा तब वे अपने पिता को पागलखाने में रख देता है। बेटा निर्मम होकर कहता है –"इस बूढे ने तो

---

173 देवेन्द्र सिंह :- भरोसा , नया ज्ञानोदय, सितंबर 2004, पृ.33
174 देवेन्द्र सिंह :- भरोसा , नया ज्ञानोदय, सितंबर 2004, पृ.33
175 वहीं – पृ. 36
176 सुरेन्द्र तिवारी :- अवरोधक , भाषा, सितंबर-अक्तूबर 2003, पृ 131.
177 सुरेन्द्र तिवारी :- अवरोधक , भाषा, सितंबर-अक्तूबर 2003, पृ 131.

हमारी जिन्दगी तबाह कर दी। पता नहीं कब तक बोझ बनकर बैठा रहेगा।"[178]जिस आदमी ने अपनी पूरी जिन्दगी अपने बच्चों के परवरिश केलिए बिताया वे आज अपने बच्चों के लिए एक बोझ बन गया है।

विकास कुमार की *'जीवन का यथार्थ'*[179] कहानी में भी वृद्धावस्था की पडाव पर पहूँचते पिता के प्रति उपेक्षाभाव रखनेवाले बेटों का चित्रण है। माँ की मृत्यू के पश्चात घर के बंटवारे के साथ पिता का भी बंटवारा होने लगा। तीनों बेटों में से किसी ने भी पिता को अपने साथ लेने को तैयार नहीं हुई और अपने बडे घर के होते हुए भी उन्हें एक झोंपडी बनवा दी और पारी से भोजन देने का व्यवस्था भी की है। वास्तव में आवश्यकता से ज्यादा धन मानवता को नष्ट करता है। अंत में कहानीकार कहते हैं – "औलाद रहने से क्या फायदा, जब औलाद का पानी ही नसीब न हुआ तो।"[180] *'वानप्रस्थ'*[181] कहानी में कहानीकार *दिनेश पाठक* ने भी बेटे और बहु की मर्यादाहीन आदतों से मन-मसोसकर तीर्थाटन केलिए निकली माँ-बाप का चित्रण किया है।

'खाली कमरा'[182] कहानी इतना मर्मस्पशी है कि कहानी पढते-पढते आखिर हम पाठक का दिल भी पिघल जाएगा। कहानी में अपने दादाजी के प्रति नौजवान पोते का निर्मम एवं निर्दय व्यवहार का चित्रण है। पोता अपनी एक्साम की तैयारी केलिए एक अलग कमरा चाहता है। तंग कमरों वाले उस घर में 'मृणाल' केलिए अलग कमरा नामुमकिन है। मृणाल भी किसी तरह का 'सैक्रि फाइस' नहीं करता। जब दादाजी के

---

178 वहीं – पृ 133

179 विकास कुमार :- जीवन का यथार्थ , अक्षरपर्व, मार्च 2007, पृ. 48

180 विकास कुमार :- जीवन का यथार्थ , अक्षरपर्व, मार्च 2007, पृ. 48

181 दिनेश पाठक :- वानप्रस्थ

182 ओमप्रकाश कृत्यांश :- खाली कमरा , कथादेश, सितंबर 2010

कमरे में व्यवस्था की तब दो दिन बाद शिकायत करने लगा –"वहाँ जरा भी शांती नहीं थी। दादाजी रात भर घडर-घडर घों घों करते रहे और उठकर बिस्तर पर बैठ जाते खाँसते तो खँसते ही रहते। जब जरा शांती मिलती और पढने में जुट जाता तो कोई –न-कोई काम बतलाने लगते। कभी सिरप की शीशी माँगते, कभी बाथरुम ले चलने को । मैं तो कहता हूँ कि आखिर दादाजी जिंदा ही क्यों है, अब तक? वे मरे क्यों नहीं जाते? बेमतलब पूरा कमरा टॉडे हुए है- इसी को कहते है स्पेस-मिसयूज।"[183]बेटे की इसतरह के बातें और खयालतों से क्रुद्ध होकर पिता कहते है- "अरे ज्यादा दिक्कत है बूढे बजरंग चौबे से तो उन्हें फेंक क्यों नहीं आते कहीं...।"[184] बाप-बेटे की उत्तेजक बातें दादाजी को दु:ख पहूँचाता है। उनकी अंतर्वेदना बढती ही चली गयी और उसी रात मृणाल के दादाजी इस दुनिया से चल बसे और दादाजी का कमरा हमेशा केलिए खाली हो चुका।

समय के पीछे मानव का दौड इस रफ्तार से है कि शायद अपने माँ-बाप के देह-संस्कार को पूरी तरह निभाने में भी वे असमर्थ लगते हैं। ऐसी संभावना का उल्लेख *सुषमा प्रियदर्शिनी* की *'देहांत'*[185] नामक कहानी में प्राप्त है। इसमें पिता की मृत्यु तथा देह-संस्कार को बेटा किसी समारोह के समान आयोजित करता है। टेलिविजन, रेडियों तथा अखबार में समाचार देता है। वह टेलिफोन करके अपने सरकारी अफसरों को लेकर आता है। शव को अस्पताल से सीधे श्मशान ले जाता है। न घर ले गया, न स्नान-पूजा आदि कराया और न माताजी को अंतिम दर्शन का अधिकार भी दिया। देहसंस्कार भी जल्दी ही करा दिया।

---

183 वहीं, पृ. 75

184 वहीं

185 सुषमा प्रियदर्शिनी :- देहांत ,

नरेन्द्र नागदेव की *'कुछ कहना है'*[186] में माँ की अंतिम घडी के समय में भी अपने स्वार्थ को निखारकर जीनेवाले बेटे का वर्णन है। माँ की इतनी बुरी हालत देखकर भी बेटा शहर में आयोजित एक राजनीतिक कार्यक्रम में भाग लेता है –"अरे... तुम्हें नहीं पता मुख्यमंत्री आये हैं न शहर में। उन्हें हार पहनाने गये हैं।"[187] जब माँ का हालत और भी बिगड जाता है तब भी बटे के मन में कोई दुख नहीं आता और वह फोन पर ऐसा कहता है- " अरे मुन्ना.... मेरी बात तो सुन। इतनी धक्का-मुक्की थी सुबह उन्हें हार पहनाने वालों की, कि उनके कोट का एक बटन टूट कर कहीं गिर गया और पता है उन्होंने मुझे..... इतनी भीड में सिर्फ मुझे यह जिम्मेदारी सौंपी कि मैं उसीतरह के दूसरे बटन को तत्काल इन्तजाम करुँ। इसलिए मैं बहुत भागदौड मैं हूँ।"[188] ऑक्सिजन सिलिन्डर केलिए जब दूसरे शहर में भटकते रहते है तब माँ का ज्येष्ठ पुत्र उसी शहर में बट्टन की दुकानों का चक्कर लगारहा था। खण्डित होते पारिवारिक मूल्य-बोध की ओर कहानिकार ने इशारा किया है।

एकल परिवार के प्रति बढती ललक आज वृद्धों के अकेलापन का एक कारण बन जाता है। *मनीषा कुलश्रेष्ठ* की कहानी *'प्रेतकामना'*[189] संतानों के तिरस्कार एवं निर्मम व्यवहार से एकांत जीवन बिताने शप्त एक बुजुर्ग अध्यापक की कहानी है। महेश्वर पंत नगर में अपने फ्लैट में अकेले रहते हैं। निकट के फ्लैट में अपने पुत्र होते हुए भी पुत्र दर्शन से वह महीनों से वंचित होता है। आज की युवा पीढी को जिन्दगी की भागदौड में अकेले रहनेवाले माँ-बाप केलिए थोडा समय निकालने का भी सोच नहीं है।

---

186 नरेन्द्र नागदेव :- कुछ कहना है , नया ज्ञानोदय, जुलाई 2003, पृ. 51

187 नरेन्द्र नागदेव :- कुछ कहना है , नया ज्ञानोदय, जुलाई 2003, पृ. 51

188 वहीं, पृ. 55

189 मनीषा कुलश्रेष्ठ :- प्रेतकामना,

एस.आर.हरनोट की *'माँ पढती है'*[190] कहानी में गाँव से प्रतिष्ठा, लोगों की वाह-वाह लूटने केलिए नगर जाकर रहते एक साहित्यकार अपनी शहरीय एवं प्रतिष्ठित जिन्दगी कायम रखने केलिए गँवेली माँ को अकेले घर में छोडता है, माँ उसे अपरिष्कृत सा लगता है। उनका विचार है कि "हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे है, फिर क्यों इन रूढियों का बोझ अपने कंधों पर ढोए चलें।"[191] उसी प्रकार *पवन शर्मा* की *'सुरेन्द्र के पिता'*[192] में भी अकेलेपन से तडप एक बुजुर्ग पिता की कहानी है। जब सुरेन्द्र की माँ की मृत्यू हुई तब सुरेन्द्र पिता को अपने साथ लिया। लेकिन थोडे दिनों के बाद वह घर वापस आता है। पिताजी कहते है- "वहाँ मुझे कोई काम तो था नहीं। बस दिन भर टी.वी के सामने बैठा रहता। सुरेन्द्र भी ऑफिस से आता और टी.वी के सामने बैठा रहता। जब तक टी.वी चलता है, कोई किसी से बात नहीं करता।"[193] यह सच है कि टी.वी के कारण परिवार में सब लोगों के बीच एक अंतराल बढ रहा है। सब अपने में ही मस्त रहता है। बुढापे में व्यक्ति दूसरों से मेलमिलाप ही चाहता है। प्यार भरी वाक् तथा सामीप्य को तरसते रहते हैं।

साजिद रशीद की *'मौत केलिए एक अपील'*[194] कहानी में बेटों के होते हुए भी अपनी आखिरी पडाव में एकाकीपन का जीवन बितानेवाले एक पूर्व हेडमास्टर का चित्रण है। दुर्गाप्रसाद के दोनों बेटे-बहुएँ अपनी नौकरी के वास्ते नगर में अपनी-अपनी फ्लाटों में शान्तिपूर्ण जीवन गुजार रहे हैं और महीने में पिताजी से मुलाकात केलिए जरूर आते हैं और उनकी जरूरतों के बारे में पूछताछ भी करते हैं। चिट्टी के रूप में लिखी गयी कहानी में अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों का सफल निर्वाह किये वह

---

190 एस.आर.हरनोट :- माँ पढती है, हंस, अप्रैल 2002,

191 एस.आर. हरनोट :- माँ पढती है , हंस, अप्रैल 2002, पृ.49

192 पवन शर्मा :- सुरेन्द्र के पिता , हंस, दिसंबर 2002, पृ.

193 पवन शर्मा :- सुरेन्द्र के पिता , हंस, दिसंबर 2002, पृ. 49

194 साजिद रशीद :- मौत केलिए एक अपील , हंस, फरवरी 2009,

मास्टर "अपने निरर्थक जीवन को अभिशाप बन जाने से पहले अंजाम तक पहूँचने"[195] केलिए आत्महत्या करने की अनुमति कोर्ट से माँगता है। अकेलेपन की अवस्था भयंकर होती है। वृद्धावस्था में जब अकेला पड जाता है तो व्यक्ति स्वयं मौत का आग्रह करता है। इसी अकेलेपन की अवस्था से गुज़रने वाले माँ-बाप की कहानी है *'पतझड की आवाज'*[196]। रजा जाफरी द्वारा रचित इस कहानी में बच्चों के होते हुए भी बडे घर में अकेले रहने को अभिशप्त माँ-बाप यह आग्रह करता है कि "खुदा केलिए जावेद (छोटा बेटा) को मेरे लिए छोटा ही रहने दो, वरना बडा होकर वह भी....।"[197] बच्चों से सम्पन्न इस घर में आज माँ-बाप ही बाकी बचा है सभी बच्चे अपने ज़िंदगी को सवारने में लगे है।

आज कुछ हद तक युवा पीढी वृद्ध माँ-बाप को सुखे पत्ते के समान मानती है। वृद्धों के जीवनानुभव उनको बीते ज़माने की बात लगता है। व्यक्तिवादी होते वर्तमान समाज में वृद्ध लोग परिवार की श्रद्धा केन्द्र न होकर मात्र अनुपयोगी बन कर रह गये हैं। *'उनका फोन'*[198] नामक कहानी में कहानीकार *चंद्रशेखर दुबे* ने सूचना-प्रौद्योगिकी के संचार जाल में अकेले पडे एक वृद्ध माँ-बाप का कथा प्रस्तुत किया है। इस कहानी में एक दादाजी, बेटा-बहु, पोता-पोती के होते हुए भी घर में अकेलापन को महसूस करता है। घर में टेलीफोन है लेकिन दादाजी को कोई फोन नहीं करता है। वह अपने रिश्तेदारों, परिचितों से कई बार कहा कि कभी-कभी उन्हें भी याद कर लिया करें। मगर किसी को उनकी सुध नहीं आती। कहानीकार कहते हैं- "संचार माध्यमों में आई क्रान्ति के बावजूद वे सारी दुनिया से जैसे कटे-कटे से ही जी रहे हैं। उनके आसपास फोन की घंटियाँ प्रायः

---

195 वहीं, पृ. 27

196 रज़ा ज़ाफरी :- पतझड की आवाज़, नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2004,

197 वहीं, . 63

198 चंद्रशेखर दुबे :- उनका फोन, साहित्य अमृत, जनवरी 2003, पृ. 46.

बजती रहती है। वे उन्हें उद्वेलित करती रहती है। मगर वे असहाय से तमाशा देखा करते हैं। वह सहज सुख भी उनकेलिए दुर्लभ हो गया।"[199]शर्मिला बोहरा जालन की 'ई-मेल' में विदेश से बच्चों के घर आने की प्रतीक्षा में अकेली पड गयी वृद्ध माँ-बाप मात्र उनके 'ई-मेल' पढ़कर ज़िन्दगी काटती है।

वर्तमान उपभोक्तावादी युग में लोग अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ती केलिए प्रयासरत है। वे परिवार से ज्यादा धन को ही महत्व देते है। इस आर्थिक लालसा ने उन्हें विदेश जाने की प्रेरणा देती है। आज के 'अणु परिवार' में यह हालत देखा जाता है कि घर में माँ-बाप बच्चों की विदेश से आने की प्रतीक्षा में पल भर जीता है लेकिन बच्चे अधिक से अधिक कमाने या पाने की लालसा से स्वदेश जाने या अपने माँ-बाप के सपनों को टालते है। *रश्मि गौड* की कहानी *'कसक'*[200] में संदीप सिन्हा के दोनों बेटे पढ-लिखकर छोटी उम्र में ही विदेश में बडी नौकरी में लगे हैं। सिन्हा दंपति उम्र के पचास वर्ष में अकेले हो गये। दोनों बच्चों ने अपनी माता-पिता का सिर ऊँचा किया पर घर- गृहस्थी बसाने को दोनों में से कोई तैयार नहीं था। जब संदीप सिन्हा को अपने पडोसी श्यामदास, जो अपने किसी भी पुत्र के 'लायक' न निकलने की कसक में रहता है, घर से किलकारियाँ सुनते है तो बडा रश्क होता है। वह अपनी पत्नी से कहता है "कभी-कभी तो इस वीराने घर को देखकर लगता है कि एक बेटा नालायक ही निकल जाता, कम से कम हमारे साथ तो रहता।"[201]

राजनारायण बोहरे की 'इकलसूंगडा' कहानी के वृद्ध पिता कहते हैं –" हमारे देश का आदमी हमेशा सपनों में जीता है, आनेवाले कल की कल्पना में ही खुश होकर

---

199 वहीं, पृ. 49

200 रश्मि गौड :- कसक , साहित्य अमृत, मार्च 2007, पृ.

201 रश्मि गौड :- कसक , साहित्य अमृत, मार्च 2007, पृ. 53

जीता है, आज में नहीं। आज के सुख तो हम कल के खातिर मुल्तबी कर देते हैं। बच्चों की खातिर काहे को अपनी जिन्दगी कुर्बान कर रहे हो। उमर बीत जायेगी तो दुनिया का हर सुख तुम्हारा मुँह चिढायेगा और तुम जिनकेलिए ये सब कुछ कर रहे हो, वे लोग अपने घर गृहस्थी में रम जायेंगे। ये पंछी जिस दिन उडना सीखेंगे, हर समझदार परिन्दे की तरह अपना घोंसला अलग बना लेंगे-दुनिया का यही चलन है "। जवानी में तो तकलीफ भोग ही रहे हो यें-कम खाकर, कम सोकर और मोटा-सोटा पहनकर। बुढापे में भी तकलीफ भोगेंगे" ।[202]

आज हरेक व्यक्ति समय के साथ दौड रहा है। इस दौड में वह कभी-कभी बनाये रखने की रवैये में भी अब परिवर्तन आ गया है। 'कोई है' कहानी में इसका संकेत मिलता है। अपने कार से टकराकर गिरनेवाले बूढे को अनदेखा करके घर आये 'उपमू' को बाद में पता चलता है कि वह बूढा और कोई नहीं है, उसके पिता थे। तब विचलित होकर कहता है –'कोई भी हो मेरा बाप या किसी ओर का जो गाड़ी के नीचे आयेगा मरेगा...मरेगा...मरेगा"।[203]

सावित्री देवी चौरसिया की कहानी *'उपेक्षा'* में वृद्ध माँ अपने बच्चों के उपेक्षा भाव पर चिंता करती है –" यह वह स्वतंत्रता का युग है, जिसमें आज की युवा पीढी को कर्तव्य बोध नहीं है। आज की शिक्षा संतानों को तर्कवादी बना, व्यक्तिवादी बना रही है, पश्चिम की बढती हवा में संस्कार खोते जा रहे हैं। ऐसे में आज माँ-बाप अपनी

---

202 राजनारायण बोहरे :- इकलसूंगडा - कथादेश, जून 2007, पृ 43

203 रवीन्द्र स्वपनल प्रजापति :- कोई है , भाषा, सितंबन-अकटोबर 2007, पृ 179

संतानों से कोई अपेक्षा नहीं कर सकते। अब तो जिन्दगी की दौड में बूढे होते माँ-बाप को चलते ही जाना है।"[204]

नीरजा माधव की *'मृत्युपर्व'*[205] की माँ *बिंदादेवी* एक वर्ष पूर्व लकवा आकर खाट पर पडी है। जब उनकी हालत कुछ और बिगडती है तब से घर के सभी लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है। सिरहाने अगरबत्ती जलाती है और प्रतिदिन पति गीता-पाठ करते हैं। सभी बच्चे अपनी व्यस्तताओं के बीच में भी घर आते है। माहौल को देखकर बिंदा देवी तडप उठती है- "जिनकेलिए मैं इतने दिनों से मुक्त नहीं हो पाई, वे तो मुझसे कब के मुक्त हो चुके हैं। कोई आसक्ति नहीं मुझमें। फिर मैं इतने दिनों से आसक्ति के मोह-बंधन में क्यों झूलती रही? मेरे मृत्यु-पर्व में सम्मिलित होने आए इनसे मुझे भी अब मुक्त हो जाना चाहिए।"[206]

वर्तमान सामाजिक परिवेश में संयुक्त परिवार न के बराबर है। 'एकल परिवार' के चलन ने आज बुढापे की समस्या को और अधिक विकराल कर दिया। घर, सम्पत्ति के साथ आज माँ-बाप का भी बँटवारा हो जाता है या उन्हें छोड दिया जाता है। उमेश अग्निहोत्री की कहानी *'परीक्षा'*[207] में ओमप्रकाश और उनकी पत्नी जानकी देवी अपने बच्चों के पास अमेरिका में आये हैं। लेकिन दोनों बेटे अपने जिम्मेदारियाँ, नौकरी तथा अपने-अपने घर-परिवारों से इतने व्यस्त थे कि माँ-बाप को उतना समय नहीं दे पा रहे जितने वे चाह रहे थे। ओमप्रकाश पत्नी से कहता है- "आज एक की बेसमेंट में रहो, कल दूसरे की बेसमेंट में। भटकते रहो अनवान्टेड से। अब और नहीं, बहोत हो

---

204 सावित्री देवी चौरसिया :- अपेक्षा , साक्षात्कार, अप्रैल 2003, पृ. 64

205 नीरजा माधव :- मृत्यु-पर्व , साहित्य अमृत, जून 2001, पृ.

206 वहीं, पृ.46

207 उमेश अग्निहोत्री :- परीक्षा , हंस, सिंतबर 2006, पृ.

गया।"[208] आखिर पति-पत्नी कन्याकुमारी में एक बाबा के आश्रम में अपनी शेष जिन्दगी बिताने लगे। युवा कथालेखिका *डॉ. स्वाति तिवारी* अपने *'अकेले होते लोग'*[209] कृति में कहती है –"वास्तव में सामाजिक, मानसिक, आर्थिक और संस्कारजन्य समस्याओं और उलझाव को झेलनेवाला वर्ग अगर कोई है तो वह सूर्यास्त की ओर बढता जीवन संध्या के दौर से गुजरता हुआ हमारा बुजुर्ग वर्ग ही है। जिसकी एक की कमाई पर कभी पूरा परिवार आश्रित हुआ करता था, आज वहीं उसी परिवार पर आश्रित होता है तो बदले में पाता है घर, परिवार, समाज या कहें तो अपनों से ही उपेक्षा, तिरस्कार और दर-दर की ठोकरें।"[210]

सुभाष नीरव की कहानी *'आखिरी पडाव का दुख'*[211] की वृद्ध माता अपने ही घर में पराये की जिन्दगी काटती है। जीवन के भरी जवानी में विधवा होकर अपने दो बेटों को आंचल में संभालकर किसी के आगे हाथ न फैलाये, काम करके बडा किया। उनकी दो आँखें थी दोनों बेटे। जिनकेलिए वे जीवन भर काम करते रहे, वे ही अपनी राह पकड आगे बढ गये हैं और वृद्ध-बीमार माँ आलतू-फालतू सामान-सी लगने लगा। दोनों, माँ को वृद्धाश्रम में छोडने का निश्चय करता है। माँ अंदर ही अंदर गिडगिडा रही –"पुत्तर मैं तुम्हें कुछ नहीं कहती, जब तक दो साँसे बची हुई है, मुझे इसी कमरे में अपने पास रहने दो..... मुझ बूढी को इस आखिरी वक्त में क्यों अपनी आँखों से ओझल करते हो? मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे बस यहीं रहने दो।"[212] वर्तमान पीढी केलिए अपनी सुख-सुविधायें ही महत्वपूर्ण है। इसकेलिए वे अपने माँ-बाप को वृद्धाश्रम

---

208 वहीं पृ. 19

209 स्वाति तिवारी :- अकेले होते लोग , वाणी प्रकाशन, 2006, पृ.

210 स्वाति तिवारी :- अकेले होते लोग , वाणी प्रकाशन, 2006, पृ.22

211 सुभाष नीरव :- आखिरी पडाव का दुख , समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर, 2008,

212 वहीं, पृ.70

में भर्ती केलिए तैयार है। पश्चिमी संस्कृति ने हमारे सामाजिक नज़रिए में भी बदलाव पहूँचाया है। यदि अमरिकावासी अपनी माँ-बाप को वृद्धाश्रम भेजने में रुचि लगते है तो भारतवासी अपनी माँ-बाप को घर में ही रखकर सेवा करने को पसंद करता था। लेकिन आज स्थिति इतनी बदल गयी कि हमारे यहाँ भी पश्चिमी संस्कृति का रवैया तेजी से हो रहा है। इसका सच्चा उदाहरण है देश के हर कोने में पनप रही बहुत सी वृद्धाश्रम।

गोपाल नारायण आवटे की *'शरणार्थी'*[213] कहानी में अपने घर में अपरिचित सा जिन्दगी बितानेवाली माँ, बेटे-बहुओं की निर्मम व्यवहार से तंग आकर हमेशा केलिए घर छोडकर वृद्धाश्रम की ओर जाती है। कहानीकार कहते हैं –"परिवार के सदस्यों का खून जब सफेद हो जाता है तो माँ-बाप का आखिरी ठिकाना ऐसे ही 'अपना घर' होते हैं। वृद्धाश्रम जिसे नये फैशन के चलते 'ओल्ड हाउस' ही ज्यादा कहा जाता है।

जीवन सिंह ठाकुर की *'एक कहानी की रिपोर्टिंग'*[214] में इसी एक ओल्ड हाउस में फादर्स डे मनाने आये नायक 'मैं' वहाँ के बुजुर्गों के साथ आधा दिन बिताता है। लेकिन फादर्स डे के अवसर पर भी वहाँ के किसी वृद्ध का बेटा या बेटी या रिश्तेदार कोई नहीं आया। कहानी का एक युवक बताता है "इस सबके बेटे, बेटी, भाई, रिश्तेदार सभी है, लेकिन रिश्ता ही नहीं ही तो क्या करें, सब रिश्तें निभाने से होता है।"[215] रिश्तों में तथा मूल्यों में आये खोखलेपन से ही आज वृद्धाश्रमों में बुजुर्गों की संख्या बढती जा रही है।

वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक समस्याओं तथा इसके प्रति उनके बच्चों के नज़रिए पर भी कहानी साहित्य में चर्चा हुई है। लगभग आज के अधिकांश परिवारों में

---

213 गोपाल नारायण आवटे :- शरणार्थी,

214 जीवन सिंह ठाकुर :- एक कहानी की रिपोर्टिंग , वागर्थ, माचै 2010, पृ.

215 वहीं, पृ. 82

युवावर्ग वृद्धों को कोलस्ट्रोल, बी.पी, मधुमेह आदि बताकर भोजन पर टोंकता है। *हरदर्शन सहगल* की *'झंझट'*[216] कहानी इसी ओर संकेत करती है। दो बूढे मित्र महीनों बाद मिलते है। दोनों बाहर जाकर खुब मज़ा लेते हैं- धूमते हैं, खाते हैं तथा पार्टी में जाते हैं। खाने में कोई कसर नहीं छोडते। घर में दोनों को डायट कंट्रोल के नाम पर सदैव सादा भोजन ही मिलते है। कुछ दिन बाद एक का बेटा दूसरे के बेटे से कहता है – "मिसेज ने इन्हें ज्यादा खाने, बाहर धूमने से मना किया है। पता होता तो घर संभालने को कोई औरत या आदमी को रख लेते। अब इन्हें संभालने केलिए बारी-बारी से छुट्टी लेनी पडेगी। बी पी, कोलस्ट्रोल बढ गये है।"[217] दूसरा जवाब देता है –"डायट कंट्रोल के नाम पर तू अपने फादर को भूखा मारता है। हमने खिलाया-पिलाया। इज्ज़त दी। हमीं पर जूती। हमारे फादर को और खराब कर गये। घर के छोटे मोटे काम कर दिया करते थे, वह भी नहीं कर पायेंगे। अब लाओ डाक्टर का बिल।"[218]इसीप्रकार मनीष कुमार सिंह की 'बाबूजी का सामान' कहानी में बूढे रिटायर होते बाबूजी के बारे में बेटा कहता है "जो इंसान किसी काम का नहीं, वह मेरेलिए बीमार घोडे की तरह है।"[219]

भारतीय समाज पारिवारिक मूल्यों तथा संबन्धों को बहुत अधिक महत्व देना है। लेकिन वृद्धावस्था में जब व्यक्ति अकेला पड जाता है तो वह अपनी शेष ज़िन्दगी किस तरह बिताए, इस पर निर्णय लेने का अधिकार उस व्यक्ति को ही देना चाहिए। *सुषमा बेदी* की *'गुनहगार'*[220] कहानी में प्रवासी बुजुर्ग नारी के इसी संकट को चित्रित किया है। नायिका 'रत्ना' बैंक की नौकरी से सेवा निवृत्त एक विधवा बुजुर्ग माँ है। पति की

---

216 हरदर्शन सहगल :- झंझट , कथादेश, जुलाई 2010 पृ.

217 वहीं, पृ. 61

218 वहीं

219 मनीष कुमार सिंह :- बाबूजी का सामान - , समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2009, पृ. 113

220 सुषम बेदी :- गुनहगार , हंस, दिसंबर 2003, पृ.

अकाल मृत्य के बाद वह अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह सफलता से किया। बेटियों की शादि की तथा बेटे को डाक्टर बनाया। लेकिन अपनी जिन्दगी के अंतिम पडाव याने बुढापे में वह अपने अपार्टमेंट में अकेले रहने को विवश होती है। उसकी विलायती बहु कहती है –"युवर मदर शुड हैव हर औन इन्डिपेन्डंड लाइफ। मेरी माँ भी तो दूसरी शादी की है। इसमें कोई बडी बात नहीं है। यहाँ जो रहता है उसे यहीं के रीति-रिवाज के अनुसार चलना चाहिए।"[221] लेकिन रत्ना अपने पति प्रतापकुमार के प्रति अपने प्यार को कलंकित होने से बचाते हुए दूसरी शादी का प्रस्ताव टाल देती है। लेकिन अपनों के होते हुए भी उसे अपनी दुर्गति पर बहुत सी आहत होने लगी। अपने अपार्टमेंट में अचानक फफक-फफक कर रो रही रत्ना सिककियों के बीच बडबडाती है –"किस्मत ने मुझे इस हद तक ला दिया किसी को मेरी जरूरत ही नहीं। अपने इस हालत केलिए किसको दोष दूँ मैं..... किस्मत को या खुद को।"[222]लेकिन अनिता गोपेश की 'लाइफ-लाइन' कहानी का पात्र अपने किस्मत को दोष दिए बिना आगे की ज़िदगी गुज़ारता है। इसमें अस्सी वर्ष वाले बाबूजी जब अपनी होमनर्स मोहिनी को अपनी शेष जिन्दगी में साथ देना चाहा तो घर के सभी लोग इसका विरोध करते हैं। मात्र बेटी श्रद्धा बाबूजी के साथ देती है और कहती है- "हर किसी के पास अपना निजी जीवन है। अपनी अपनी व्यस्ततायें। कौन उनके साथ रह सकता है हर घडी? एक लंबा समय गुजारा है उन्होंने माँ जी के साथ, अकेलापन उन्हें काटता न होगा? अपने जीवन को बेहतर बनाने का हक हर किसी को है, उन्हें भी है। वह जीवन चाहे दो बरस का हो, चाहे दस बरस का। क्या चाहते हो तुम सब? यह जीवन वो रो-रोकर बिताएँ?"[223]

---

221 सुषम बेदी :- गुनहगार , हंस, दिसंबर 2003, पृ.24

222 वहीं पृ. 28

223 अनिता गोपेश :- लाइफ-लाइन , नया ज्ञानोदय, अप्रैल 2007, पृ. 74

वृद्धावस्था की अनेकों समस्याओं एवं कठिनाईयाँ के होने पर भी वे स्वाभिमान को बचाने केलिए संघर्षरत है। इसमें कुछ लोग सफल होते हैं तो अधिकतर असफल रह जाते हैं। *अमन चक्र* कृत *'स्वाभिमान'*[224] अपनी अस्मिता एवं स्वाभिमान को बचाने केलिए संघर्ष करनेवाली एक बूढी माँ की कहानी है। कहानी में शान्ता बुआ अपनी आखिरी समय तक आत्मनिर्भर होकर रहना चाहती है। लेकिन जब घर में बहू का प्रवेश हुआ उनके आगे परीक्षा की घडी आ गयी। बहू शालिनी उन्हें अपने अधिकार में रखने की कोशिश करने लगी और उससे बोला –"यहाँ रहकर मन लगाने से अच्छा होगा कि आप काशी व मथुरा में जाकर किसी वृद्धाश्रम में रहिए तथा भगवान में मन रमाइए।"[225]तब शान्ता बुआ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है कि- "मैं बूढी जरुर हो गयी हूँ। परन्तु कमजोर नहीं..... मुझे अपनी जिन्दगी अपने तरीके से जीने का पूरा हक है।"[226] एक हफ्ते बाद बेटे और बहु शान्ता बुआ को अकेले छोडकर चले जाते हैं।

डॉ. स्वाति तिवारी की 'अकेले होते लोग' पुस्तक की भूमिका में इन्दौर के देवी अहल्या विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. भतर छापरवाल ने ऐसा लिखा है –"दुनिया केवल युवा पीढ़ी की ताजगी-स्फूर्ति पर ही नहीं टिकी हुई है, वहाँ उम्र की झुर्रियों के अनुभव भी संबल बनते आए है"[227]

वर्तमान पीढ़ी अपने व्यक्तिगत जीवन को बनाने की कोशिश में है, दौड़ में है।इस दौड़ में व्यक्ति को अपने बच्चों के पालन-पोषण केलिए वक्त नहीं है। एक समृद्ध भविष्य को बनाने के होड में हम अपने बच्चों को *क्रश* में बेज रहे हैं। उसके साथ बिताने केलिए खुशियों का कुछ पल भी आज हमारे पास नहीं हैं। हम इस बात से अज्ञात है कि जब

---

224 अमन चक्र :- स्वाभिमान , अक्षरपर्व, फरवरी, 2008, पृ.

225 अमन चक्र :- स्वाभिमान , अक्षरपर्व, फरवरी, 2008, पृ. 48

226 वहीं – पृ.

227 स्वाति तिवारी - अकेले होते लोग, तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2006, पृ.11

हम बुज़ुर्ग बन जाते हैंतो इन बच्चों का पास वृद्ध माता-पिता को देने केलिए वृद्धसधन ही होगा।

4.7) विस्थापन की झंझट

विस्थापन (Displacement) का सामान्य अर्थ एक जगह से दूसरी जगह की ओर जाना है। देश से विदेश जाना, गाँव से शहर जाना, शहर छोडकर गाँव जाना आदि नाना प्रकार के विस्थापन होता है, हो सकता है। लेकिन विस्थापन, जो विस्थापित होता है, उसकी अपनी इच्छा के अनुसार होता है तो उसमें कोई आपत्ति ही नहीं भालाई भी होती है। लेकिन जब व्यक्ति को बिना अपनी इच्छा के अपने गाँव को छोडना पडता है, घर की उपेक्षा करना पडता है या देश को छोडना पडता है, अपनी भूमि को नष्ट करना पडता है तो वह उसकेलिए खतरनाक हो जाता है। आजकल विस्थापन की चर्चा इसी प्रसंग में होता है जहाँ व्यक्ति को अपनी अनिच्छा के बावजूद अपने देश से, गाँव से, घर से जाना पडता है।

यूनेस्को ने विस्थापन को ऐसा रेखांकित किया है "The displacement of people refers to the forced movement of people from their locality or environment and occupational activities. It is a form of social change caused by a number of factors, the most common being armed conflict. Natural disasters, famine, development and economic changes may also be a cause of displacement."228

इस परिभाषा के आधार पर विस्थापन को निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं –

1. विकास के नाम पर।

---

228 http://www.unesco.org/new/en/social-and-human-sciences/themes/international-migration/glossary/displaced-person-displacement/

2. युद्ध, सांप्रदायिक, जातीय दंगों के नाम पर।

3. नौकरी या बेहतरीन जीवन के तलाश में।

4. प्राकृतिक आपदा के कारण।

इसके अलावा विस्थापन की एक और नई स्थिति आज उभर रही है-

5. वृद्धावस्था के कारण।

6. सांस्कृतिक विस्थापन।

4.7.1) विकास के नाम पर विस्थापन

शहरीकरण से उत्पन्न एक उलझी हुई समस्या है विस्थापन की प्रक्रिया। श्री महेशचन्द्र पुनेठा ने लिखा है –"विस्थापन एक भू-भाग का छूटना नहीं या एक भूगोल से निकलकर दूसरे भूगोल में चला जाना मात्र नहीं है, बल्कि अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपनी प्रकृति से भी बाहर होना है जिसकी क्षतिपूर्ति भी संभव नहीं है।"[229] विकासशील देशों में यह पलायन की प्रक्रिया ज़ोरों से हो रही है। इसका मुख्य कारण है शहरीकरण और औद्योगीकरण। इसके कारण ग्रामीण संस्कृति में आये बदलाव याने कृषि एवं कुटीर उद्योगों के ह्रास के परिणाम स्वरूप रोजी रोटी केलिए लोग शहर की ओर पलायन करते हैं। विस्थापित जीवन की पीडाएँ सहकर नगरों में तंगी जीवन बिताने को वे मज़बूर हो जाते हैं। लेखक राकेश कुमार ने भी यही कहा है –" गाँवों में एक पूरी नवसाम्राज्यवादी कृषि प्रौद्योगिकी खडी की जा रही है जो हमारी ग्राम्य संस्कृति को ही ध्वस्त कर रही है। यही कारण है कि बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान से प्रवासी श्रमिक रोजी-रोटी की तलाश में विस्थापित हो रहे हैं।"[230]

---

229 श्म्या राज :- उजडते गाँवों की तलाश : समकालीन हिंदी कविता के विशेष संदर्भ में, पंचशील शोध समीक्षा, सं. हेतु भरद्वाज, अक्टोबर-दिसंबर 2013, पृ. 32.

230 सं. पी. रवि :- संपादकीय लेख, जनविकल्प, अंक 2, जुलाई 2012, तृश्शूर ISSN : 22316191

रमेश शर्मा की 'शायद तुम उसे चाहने लगे थे' कहानी में कार्परेट वर्ग के द्वारा बाँध निर्माण केलिए पूरे गाँव को उजाडने का चित्रण है। कहानीकार बताता है –" बाँध पूरा हो गया। ग्रामीणों के पुनर्वास को लेकर एक बार फिर कोहराम मचा, एन.जी.ओ के नेताओं ने भूख-हडताल शुरू कर दी। ले देकर कस्बे के बाहर बनी झोंपडियों में ग्रामीणों के पुनर्वास की व्यवस्था कर दी।"[231] गुजरात, महाराष्ट्रा, ओडीसा, हिमाचल प्रदेश, आध्र प्रदेश इंन्हीं प्रदेशों के लोगों को बडे-बडे बाँध निर्माण के कारण भी विस्थापित होना पडता है।

आज, विकास के नाम पर सड़क (एक्सप्रेस हैवे) तथा रेल कोरिडोर (हैय स्पीड रेल कोरिडोर) बनाने केलिए लोगों की ज़मीन हडप ली जाती है और लोगों को नगर के पीछे ऐसी जगह में विस्थापित कर देता है जहाँ नगर के कूडे-कचरे फेंक देते हैं। 'यमुना एक्सप्रेस वे', 'मेट्रो रेल' आदि की निर्माण प्रक्रिया इसका उदाहरण है।

आज भूमि अर्जन के बहाने छोटे एवं मध्यम वर्ग के लोगों से उनकी ज़मीन हडप कर निजी क्षेत्रों को बेच रहीं है। तदुपरान्त वहाँ की आबादी बड़े पैमाने पर विस्थापित हो रहा है। किसान वर्ग मज़दूर बनकर शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। भूमिहीन किसान अब एक सच्चाई बन गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों केलिए सरकार किसानों का हक छीन रही है। अफसोस की बात यह है कि आम नागरिकों द्वारा चुनी गयी सरकार, समाज के कुछ गिने चुने उद्योगपतियों एवं रईसों केलिए गुलामी कर रही है। कहानी *'मुजरिम'*[232] में इसका सच्चा चित्रण देखा जा सकता है। प्रस्तुत, कहानी में लोकबाबू औद्योगीकरण के वजह से एक किसान, किसान से मजदूर और मजदूर से अन्त में एक मुजरिम बन जाने का खुला एवं मार्मिक चित्रण किया है। गरीब किसानों और मज़दूरों का गाँव *फुलझर* में

---

231 रमेश शर्मा :- शायद तुम उसे चाहने लगे थे, अक्षरपर्व, अप्रैल 2006, पृ. 47.

232 लोकबाबू :- मुजरिम, पहल, मार्च-अप्रैल 2008, पृ. 151.

अब छोटे-बडे सैकड़ों उद्योग खडे हो गये है –" खेती की ज़मीन पर खडे ये उद्योग किसानों को मजदूरों में और मजदूरों और मजबूरों में तब्दील करने के उद्योग भी बन गये है।"[233]

1980 के बाद के आर्थिक उदारीकरण के बाद आये नवीन आर्थिक नीतियों (एल.पी.जी) के तहत 'सेज़ आक्ट 2005' के अन्तर्गत कार्पोरेट व्यवसायिकरण केलिए सरकार लोगों की ज़मीन हडप रही है। वैश्वीकरण के सन्दर्भ में औद्योगिक विकास के नाम पर विस्थापन का दंश एक गरीब आम आदमी सबसे अधिक झेल रहा है। जहाँ कभी उनका लहलहाता खेत था वहाँ आज धुँआ उगली बडी चिमनी है या बडा कारखाना है। जो कल तक स्वावलंबी था, वह आज उस कारखाने में मज़दूर बन जाता है। *'मुजरिम'* में भी प्रमुख पात्र *ललित* भूमि अधिग्रहरण से किसान से फैक्टरी मज़दूर बन जाता है। अपनी ही ज़मीन पर स्थित फैक्टरी का नौकर बने ललित फैक्टरी की ट्रक के धक्के से जख्मी होता है और फिर जिन्दगी से असफल होकर आत्महत्या करता है। *'जड-ज़मीन'*[234] कहानी इसी विषय को प्रतिपादित किया है।

चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानी *'मानबोध बाबू'* में नायक *मानबोध गुप्ता* कहता है –"गाँव अब रहने लायक नहीं रहा। अब वहाँ अपने लोग भी अपने नहीं रहें।... सब तो भाग गए हैं शहर की ओर रोजी-रोजगार केलिए अब तो मजदूर भी शहर से पैसा कमाकर गाँव आता है तो गाँव में अपने किसी काम केलिए मजदूर खोजता है।"[235] समय के साथ मानव के जीवन में भी बदलाव आना स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन जब ये बदलाव या परिवर्तन व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन पर

---

233 वहीं. पृ. 151.

234 अरुण यादव :- जड-ज़मीन, हंस, सितंबर 2009, पृ.

235 चंद्रकिशोर जायसवाल :- मानबोध बाबू, हंस, जनवरी 2006, पृ. 22.

समस्याओं का बवंडर पैदा करता है तो यह बदलाव उसकेलिए विनाशकारी साबित होता है। व्यक्ति के प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए उसे संघर्ष करना पडता है। कथाकार *स्मिता* की कहानी *'कशमकश'*[236] में गाँव से शहर आये कालीबाबू शहरीय संस्कृति में 'मिसफिट' हो जाता है। अपनी पत्नी तथा बच्चों के बीच वह *न घर का न घाट का* जैसे पड जाता है। " वैसे भी वे उनकी सर्किल में मिसफिट थे क्योंकि बातचीत में ज्यादातर वे स्थानीय बोलियों के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। अंग्रेज़ी न के बराबर बोलते या बोल पाते। वे चाइनीज खाना पसंद नहीं करते थे। वे लुंगी-गंजा या धोती-कुर्ता पहना करते थे। मिसफिट कालीबाबू धीरे-धीरे सिमटते गये।"[237] यूरोपियन शौचालय भी उसे बेचैन कर रहा है। विस्थापित होकर शहरों की ओर गये लोग अपनी भाषा, संस्कृति तथा अपनी जडों से कट जाते हैं। इन बदलावों के साथ जो न जुड पाते हैं वह इस नवीन संस्कृति में अकेले पड जाता है। अपने अदंर ही अंदर घुट-घुट कर रह जाता है। उसी प्रकार *अल्पना मिश्र* की कहानी *'पुष्पक विमान'*[238] में मुहल्ले में सब्जी बेचनेवाले फूफा आखिर दूर शहर जाकर फास्ट-फुड की दुकान खोलता है और अन्तिम साँस तक वहाँ रह जाता है।

गुलजार की *'बाँस'*[239] कहानी में झोंपड पट्टी में रहनेवालों को सरकार 'विकास योजना' के नाम पर सिमेंट की तीनमंजिला पक्की बिल्डिंग और एक-एक मंजिल पर चौबीस-चौबीस फ्लैट दिला देते हैं। लेकिन उन लोगों को नयी जगह एक गोदाम सा लगता है- " डब्बे-बोतल में बंद कर दिया है। आदमियों का गोदाम लगता है।

---

236 स्मिता :- कशमकश, हंस मार्च 2002, पृ. 69.

237 वहीं पृ. 70.

238 अल्पना मिश्र :- पुष्पक विमान, हंस, सितंबर 2009, पृ. 18.

239 गुलजार :- बाँस, हंस, जून 2004, पृ. 14

सबको पार्सल में पैक करके रख दिया है।"[240] झोंपडपट्टी में मिली जो आज़ादी अब उन्हें न के बराबर है। सरकार को गाली देकर वे कहते है –" दरबों में बंद कर दिया है सरकार ने। पता है क्यों? ताकि गरीबी की बास बाहर ना जाए।"[241] यह सच है कि अपने देश की गरीबी को दूसरों के सामने प्रदर्शित करना विकासशील देश की बहुत बड़ी समस्या है। आज सरकार गरीबी को मिटाने में नहीं, छिपाने में कार्यरत है।

4.7.2) युद्ध एवं सांप्रदायिक दंगो से विस्थापन

विश्व भर में विस्थापन का एक प्रमुख कारण युद्ध एवं सांप्रदायिक दंगे या गृह युद्ध है। आज संपूर्ण विश्व में इन्हीं कारण से अधिकतर लोग विस्थापित हो रहे हैं। विस्थापन की इस समस्या एवं पीडा भरी दास्तान हिंदी कहानी साहित्य में भी उपलब्ध है। *स्वदेश दीपक* की कहानी *'रफ्यूजी'*[242] में भारत बंटवारे के समय पाकिस्तान में रिफ्यूजी बनकर जिंदगी बितानेवाली 'नानी'को अपने दोहते इन्दर के उग्रवादियों एवं हिंदुओं के खिलाफ बोलने के कारण पाकिस्तान से भी विस्थापित होकर पुनः भारत लौटनी पडती है। जब वे सब हरियाना की सीमा पहूँच गयी तब नानी की रूह ईश्वर की ओर विस्थापित हो गया।

गोपाल नारायण आवटे की 'शरणार्थी'[243] कहानी में भी बंटवारे के समय अपने सारे शिश्तेवालों से दूर, अपने राष्ट्र या देश से दूर पाकिस्तान में जलालत भरी जिंदगी जीनवाली दो बच्चों की माँ की कहानी है।

4.7.3) बेहतरीन जिंदगी या नौकरी की तलाश में

---

240 गुलजार :- बाँस, हंस, जून 2004, पृ. 15.

241 वहीं – पृ. 16.

242 स्वदेश दीपक :- रफ्यूजी , नया ज्ञानोदय, जनवरी 2007, पृ. 14

243 गोपाल नारायण आवटे :- शरणार्थी , हंस, अप्रैल 2007, पृ. 24

हर इंसान अपने बाह्य दिखावा तथा आधुनिकीकरण अपनाने केलिए गाँव से शहर तथा शहर से विदेश की ओर पलायन कर रहा है। शहरीय जिन्दगी के प्रति महत्वाकांक्षा या वर्तमान सुख-सुविधाओं के प्रति मोह ग्रामीण जनता के मन में भी बढ रहा है। महानगर के झुग्गी झोंपडियों में रहनेवाले आम जनता के पास गाँव में थोडे बहुत खेत होते हैं। किन्तु अधिक पैसा कमाने की लालच तथा शहरीय आदमी के रंग-दंग, शान-शौकन आदि से आकर्षित वे अपने गाँव की स्वच्छ वायु तथा शुद्ध जल एवं खाद्य पदार्थों को छोडकर नगर के प्रदूषित वातावरण में बसते हैं। फिर भी वे वापस लौटना नहीं चाहते हैं।

जब गाँव की युवा पीढ़ी पढ-लिखकर शहर में नौकरी करने लगते थे तब अपनी ज़िंदगी वहाँ गुजारना पसंद करता है। वे वापस गाँव लौटना नहीं चाहते हैं। पाला-पोसा बढ़ानेवाले गाँव अब उन्हें अपरिष्कृत-सा लगता है। *'जीवन का यथार्थ'*[244] कहानी में *विशु माहतो* अपने बेटो को पढ़ाकर डाक्टर बना दिया। जब विशु बेटे से गाँव में 'क्लीनिक' खोलने का आग्रह प्रकट किया तो बेटा गेहुअन सांप की तरह फनक कर कहता है –" भाड में जाय आपका गाँव और आपकी ज़मीन। गाँव में खोलकर कितना पैसा कमायेंगे। शहर में रोज़ हज़ारों कमा लेते हैं।"[245]

अमित तिवारी की *'उसका नाम लीना है'*[246] कहानी में लीना अपने परिवार की बेहतरीन भविष्य केलिए पति एवं बच्चों से अलग होकर विदेश में नौकरी करती है। " आज बहुत से मध्यवर्गीय परिवारों के सदस्य विदेश जा बसे हैं। भूमण्डलीकरण ने इस प्रक्रिया को सहज बना दिया है। शिक्षित मध्यवर्ग के लोगों की 'समकालीनता' भारत के

---

244 विकास कुमार :- जीवन का यथार्थ, अक्षरपर्व, मार्च 2007, पृ. 46.

245 वहीं, पृ. 47.

246 अमित तिवारी :- उसका नाम लीना है, अभिव्यक्ती.कोम/वतन से दूर/2003.

गाँव से नहीं, वैश्विक संदर्भ से परिभाषित होती है। खुद गाँव का आदमी 'परदेस' पहले भी जाता था, अब 'विदेस' जाना भी श्रेयस्कर मानने लगा है।"[247] देश की मेहनती और मेधावी युवा पीढ़ी अमेरिका और यूरोप के विभिन्न देशों में ऊँ ची तनख्वाह वाली नौकरियाँ पसन्द करती हैं। लिहाजा वे वहीं रह जाती हैं। *पंखूरी सिन्हा* की *'किस्सा ए कोहिनूर'*[248] कहानी की जयन्ती प्रोजेक्ट के सिलसिले में अमेरिका जाती है और प्रोजेक्ट समाप्त करने पर वहाँ की एक बडी कंपनी में नौकरी हासिल कर अमरिका में ही रह जाने का निश्चय करती है।

4.7.4) प्राकृतिक विपदा के कारण

प्राकृतिक आपदाओं के कारण जो लोग विस्थापित हो रहे हैं उनकी समस्याओं को हिंदी कहानी साहित्य में अभिव्यक्त किया गया है। *ऊर्मिला शिरीष* की *'कुर्की'*[249] कहानी में प्राकृतिक आपदाओं से पीडित होकर अपने ज़मीन छोड काम की तलाश में शहर की ओर जा रहे नानाजी एक फैक्ट्री में चौकीदार बन जाते हैं। शहर में काम करते वक्त भी उनकी आत्मा गाँव में ही बसती थी। उसके इस अवस्था को यों चित्रित किया गया है –" दूसरों के यहाँ नौकरी करना नाना को कितना अपमानजनक और दुखद लगता था। उनकी आत्मा तो वहाँ बसती थी, अपने घर में, खेत-खलिहान में, अपने लोगों के बीच।"[250]

---

247 अजय तिवारी :- समकालीनता और साहित्य, नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008, पृ.103.

248 पखूरी सिंहा :- किस्सा ए कोहिनूर, कथादेश, अप्रैल 2006.

249 ऊमिला शिरीष :- कुर्की, समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर, 2006, पृ.127

250 वहीं, पृ.135.

संजय विद्रोही की *'थपेडा'*[251], सुनामी से पीडित लोगों की दुखपूर्ण दास्तान है। इसमें कहानीकार ने उस दर्दभरी हालत का वर्णन किया है जहाँ नायिका बच्चे की भूख मिटाने केलिए घर-घर भीख मांगती है। *अरुण मिश्रा* की *'फ्लड कंट्रोल'*[252] नामक कहानी में डाक्टर घोष के माध्यम से कहानीकार बाँध निर्माण के विरुद्ध उठनेवाली आम जनता का आवाज़ यों प्रस्तुत करता है –" वैसे बडे बाँधों पर खर्च भी अधिक आता है, विस्थापन की विभीषिका भी है, खेती का ज़मीन डूबना है, कई प्रोब्लम है। बडा बाँध से खाली ठेकेदार, भ्रष्ट राजनेता और इंजीनियर लोग का फायदा है। गरीब तो खाली विस्थापित होता है।"[253] कहानीकार ने यहाँ कई 'सोश्यल आक्टिविस्ट' का परामर्श किया है, जिन्होंने इसप्रकार के जनविरोधी विकास प्रक्रिया के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं और इनको कई तरह का अवार्ड भी मिलते हैं। कहानीकार ने उस सच्चाई को यहाँ प्रस्तुत किया है कि जो अधिकतर लोग नहीं सोचते हैं या चिंता नहीं करते कि एक्टिविस्टों को कई तरह का अवार्ड मिलते हैं, लेकिन इन विस्थापित लोगों को क्या मिला? यह एक सवाल है जो हमें सोचने पर मज़बूर करते हैं और बहुत अधिक चुभन देनेवाले भी हैं।

4.7.5) वृद्धावस्था

वृद्धावस्था में भी लोग विस्थापित हो जाते हैं। जैसे पढ़े-लिखे बच्चे जब अपने जन्म स्थान से नौकरी के वास्ते या अन्य कारणों से अन्य प्रान्तों में बसते हैं तब वे अपने माँ-बाप को भी साथ ले जाते हैं। ये बुजुर्ग लोग अपनी मर्जी से नहीं जाते हैं। इससे इन्हें भी कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। *सुभाष चन्द्र कुशवाहा* की *'जर-ज़मीन*

---

251 संजय विद्रोही :- थपेडा, अक्षरपर्व, फरवरी 2006, पृ. 45

252 अरुण मिश्रा :- फ्लड कंट्रोल, कथादेश, जुलाई 2004, पृ. 114

253 वहीं, पृ. 16.

जिंदगी'[254] कहानी की माँ जब गाँव से शहर अपने बेटे के साथ रहते हैं तो वह 'डिप्रेशन' का शिकार बन जाती है। वह चुपचाप सबको अपरिचितों की तरह निहारती है, सदैव चुप्पी साधे रहती है। जब बेटा गाँव जाने की बात बताया तब "अपनी सत्ता, अपनी जर-ज़मीन पर लौटने के अहसास से माई की आँखों की सूजन घटने लगी वह तदुपरान्त नज़र आने लगी।"[255] *पवन शर्मा* की '*सुरेन्द्र के पिता*'[256] में माँ की मृत्यु के बाद सुरेन्द्र पिताजी को अपने साथ शहर ले जाता है। लेकिन पिता उस घर के शहरीपन से ऊबकर गाँव वापस चला जाता है।

4.7.2) सांस्कृतिक विस्थापन :

हरेक देश के लोग अपने परिवार केलिए, अपने लिए अपना देश, अपनी ज़मीन तथा अपने जड को छोडकर विदेश की ओर रवाना होते है। ऐसा विस्थापन सांस्कृतिक क्षेत्र में बदलाव ला रहा है। डॉ. बी. विजयकुमार ने अपने एक आलेख में ऐसा लिखा है- " उत्तर औपनिवेशिक दौर में जहाँ हमारे जीवन से संबन्धित भौतिक उपादानों के साथ-साथ हमारे आन्तरिक पहलुओं का भी विनाश या विस्थापन हो रहा है, जिनमें सबसे खतरनाक है संस्कृति का विस्थापन। संस्कृति के इस विस्थापन के कारण उपनिवेशी सभ्यता के जड और बीभत्स तत्व धीरे-धीरे संस्कृति का रूप धारण करते रहते हैं और आम आदमी इस कायापलट से या तो वाकिफ़ नहीं है या इसे नज़रअन्दाज़ करते हैं।"[257] आज भारत के अलग अलग प्रान्तों में इस तरह का सांस्कृतिक विस्थापन देखा जा सकता है। इसका एक उदाहरण है केरल राज्य। केरल वासियों का अरब देशों से बहुत

---

254 सुभाष चन्द्र कुशवाहा :- जर-ज़मीन-ज़िदगी, कथादेश, जून 2008, पृ. 15.

255 सुभाष चन्द्र कुशवाहा :- जर-ज़मीन-ज़िदगी, कथादेश, जून 2008, पृ. 19.

256 पवन शर्मा :- सुरेन्द्र के पिता, हंस, दिसंबर 2002

257 बी. विजयकुमार :- उत्तर-अपनिवेशवाद की विस्थापित जीवन-स्थितियाँ – पॉल गोमरा का स्कूटर : हिन्दी कहानी के सौ वर्ष :- सं. एन.एम. सण्णी, जवाहर पुस्तकालय 2008, पृ. 150.

पहले से ही संपर्क रहा है। आज अरब देशों में काम के वास्ते विस्थापित भारतीयों में से अधिकतर लोग मलयाली है। परिणाम स्वरूप प्रवासी केरलीयों के माध्यम से यहाँ एक अरब संस्कृति विशेषकर खान-पान के संदर्भ में प्रस्फुटित हो रही हैं। इसीतरह विदेशों में भारतीय संस्कृति भी विस्थापन के ज़रिए पनप रही है। जैसे फिजि, मौरीशियस, सिंगपूर आदि देशों में भारतीय संस्कृति का झलक देखा जा सकता है।

अंत में हम कह सकते हैं कि इस सदी की सबसे बड़ी समस्या 'विस्थापन' है और इसकी विभीषिका का चित्रण हिंदी कथा साहित्य में बहुत ही बारीकी से किया है।

4.8) हाशिए की आवाज़

मानवीय हकों से सभी प्रकार से वंचित, शोषित, पीडित, प्रगति में सबसे पिछड़ा हुआ और दबाया हुआ लोग माने हाशिएकृत वर्ग को तथा उनकी समस्याओं एवं उन पर हो रही शोषणों को नज़रअन्दाज न करके अपनी रचनाओं के प्रमुख मुद्दे के रूप में चुनकर पाठकों को भी उनकी पीडा का अहसास कराने में आज के कहानीकार सफल हुए हैं। इन्हीं के फलस्वरूप आज की साहित्यिकक विधाओं में दलितसाहित्य से संबंधित अनेकों रचनायें उपलब्ध है जिनमें विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ भी हो रही हैं। आज दलित साहित्य एक अलग साहित्य शाखा के रूप में आगे बढ़ रहा है। डॉ. नामदेव के अनुसार " दलित साहित्य अब तक का सशक्त सामाजिक यथार्थवाला साहित्य बनकर उभरता है जो शोषित, पीडित, वंचित समूहों को सामाजिक न्याय दिलवाकर उनको समाज की मुख्यधारा से जोड़ना चाहता है, सामाजिक एकता को मज़बूत करना चाहता है।"[258]

आज के इस भूमण्डलीकृत समाज में दलित अपने आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में उन्नयन करना चाहते हैं। वे अपने

---

258 डॉ. नामदेव :- दलित साहित्य का अतीत, वर्तमान और भविष्य , जन विकल्प तृशूर, जनवरी 2013, पृ. 36.

तिरस्कार भरे जीवन से मुक्ति चाहते हैं। अतः चली आ रही रूढ़ियों एवं परंपराओं को तोड़कर अपनी अस्मिता को कायम रखने का अथक प्रयास करते हैं। उनके इस अदम्य प्रयास को साकार बनाने में आज के साहित्यकार अपने शब्दों द्वारा उन्हें प्रेरित करते हैं। ऐसा माना जाता है कि दलित साहित्य प्रतिरोध एवं प्रतिशोध का साहित्य हैं। सुशीला टाकभौरे, ओमप्रकाश वाल्मीकी, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, सत्यप्रकाश, सूरजपाल चौहान, देवेन्द्र चौबे आदि कहानीकारों ने दलित एवं हाशियेकृत लोगों की जीवन संघर्ष को अपनी कहानी के वर्ण्यविषय के रूप में चुना है।

व्यक्ति जितने भी सभ्य हो, अपने पड़ोस या आसपास तथा अपने कार्यालय में निम्न जाति के लोग हैं तो उनसे दूरियाँ रखता है और फुसफुसाते हुए उन्हें अपमानित करता है। छुआ-छूत, अस्पृश्यता आदि को संवैधानिक या कानूनी कायदे से मिटा दिये हैं। फिर भी लोगों के मन में यह भेदभाव आज भी ज़िन्दा है। उच्चजाति के लोग निम्नजाति के लोगों को विशेषकर दलित को अपमानित करने में कभी चूकते नहीं है। आज़ादी एवं संविधान के पैसठ वर्ष के बाद भी निम्नजाति के लोग अगर शिक्षित एवं ऊँचे पद पर हो, फिर भी इन्हें दफ्तर के निम्नश्रेणी के कर्मचारी भी मज़ाक उडाते हैं, चुटकी भरते हैं, वह भी फुसफुसाकर। इसी ढोंगबाजी का खुलासा करने वाली कहानी है *अजय नावरिया* की *'एस धम्म सनंतनो'* —" नए समाज, नई दुनिया में एक हीनता बोध, एक नफ़रत लिए हम पले-बढ़े। इस आधुनिक पढ़े-लिखे समाज में प्रत्यक्ष हिंसा नहीं थी हमारे लिए, प्रत्यक्ष नफ़रत भी नहीं। दबी आवाजें थी, चीरती हँसी थी, व्यंग्य भरी मुसकुराहट थी और व्यंग्यपूर्ण विशेषण।"[259] ऐसा देखा गया है कि वरिष्ठ अधिकारी यदि दलित है तो उसे मानसिक तौर से स्वीकारना, उच्चवर्ग के लोगों को

[259] अजय नावरिया :- एस धम्म सनंतनो , हंस, दिसंबर 2003, पृ. 58.

अस्वीकार्य है। *सूरजपाल चौहान* की कहानी *'जाति'*[260] में दलित *सुनिल डुलगच* ब्रांच मैनेजर है। दफ्तर के हैड-क्लर्क 'पी.सी शर्मा' अपने साथियों से कहता है –" कैसा ज़माना आ गया, अब तो इस ऑफिस के ब्रांच मैनेजर चूहडे-चमार भी बनने लगे।[261]इतना ही नहीं दफ्तर के चपरासी भी अपने उच्च अधिकारी को शुडु साहब (शेड्यूल्ड कास्ट साहब) कहकर चुटकी भरते हैं।

आज नेता लोग चुनाव के समय गाँव के निम्न जाति के साथ खुलते-मिलते रहते हैं, उनके साथ खाना खाते हैं, सबकुछ करते हैं ताकि अपना वोट पक्का कर लें। फिर ये लोग इनकेलिए अस्पृष्ट बन जाते हैं। *नीरजा माधव* की कहानी *'टेपरा'*[262] में जब *चील्हा* को गाँव के पंज हाथों को खौलते तेल में डालने का सज़ा देते हैं, और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा घटना जब विवाद होता है तब स्वयं मंत्री जी वहाँ आते हैं और इसे सांप्रदायिक दंगे के साज़िश में बदल देता है। कहानी में *नक्कू* के माध्यम से कहानीकार नेताओं एवं संस्थाओं वाले के पोल खोलता है –" तू क्या जान रही है कि सचमुच तेरा हाल लेने आ रहे हैं। अरे, अपना वोट पक्का करने आ रहे हैं। और वो जो संस्थावाले आए थे, औरतों का ठेका लिए, वो भी लाखों-करोडों रूपए सरकार और विदेश से इसी नाम पर ऐंठते हैं। फोटू खींचे तेरी तो क्या तू उनकी बहिन लगती थी? अपना मतलब साध रहे थे उसी को दिखाकर और माल लूटेंगे कि मैं ये कर रहा हूँ वो कर रहा हूँ।"[263]

सदियों से उत्पीडन को भोग रही दलित स्त्री दूसरों केलिए मात्र भोगवस्तु है। दलितों को अछूत मानते हुए भी दलित स्त्री का शारीरिक उपयोग सेक्स के रूप में करते हैं। यदि इसके खिलाफ वह संवैधानिक न्याय मांगती है तो वहाँ भी उसका चीरहरण होता

---

260 सुरजपाल चौहान :- जाती , साहित्य अमृत, अगस्त 2008, पृ. 165.

261 वहीं, पृ. 165.

262 नीरजा माधव :- टेपरा, साहित्य अमृत, जून 2006, पृ. 50

263 वहीं, पृ. 52.

है। *एस.आ. हरनोट* की *'चश्मदीद'*[264] कहानी में गरीब और असहाय हरिजन की इकलौती बेटी सुमन को ऊँची जात वाला विधायक के बेटे ने बलात्कार किया। गाँववालों ने इस अत्याचार के खिलाफ आगे लड़ने केलिए साथ हो गया तो केस कोर्ट में पेश कर दिया। लेकिन कोर्ट में सभी वकील और दूसरे लोगों के आखों में जीवंत रोमांचकारी 'केवल बालिगों केलिए' जैसी फिल्म देखने की प्रतीति है। प्रारंभ में इस मामले की पुरजोर आवाज़ उठानेवाले सब पीछे हट गये। कोर्ट में वकील अनोखे, अश्लील, बेबुनियादी प्रश्न पूछकर जज के सामने, वकीलों की मौजूदगी में, उसके अपने बाबू के समक्ष उसके कपड़े बारी-बारी उतारे गये.... उसे निपट नंगा कर दिया गया। केवल *सुमना* के घर का कुत्ता कोर्ट हाल में प्रवेशकर अपने हाव भाव से अपना हमदर्दी प्रकट किया। " सुमना को सांत्वना दे रहा हो कि उसके साथ भले ही और कोई न हो, लेकिन वह तो उसके साथ है।"[265]

एक ओर दलित अशिक्षित होकर दूसरों के शोषणों का शिकार हो रहा है तो दूसरी ओर वे पढ़-लिखकर अपने भविष्य को सुधारने में सफल भी हो रहे हैं। अनपढ़ होने के कारण अधिकांश गरीब लोग धनी लोगों के धोखे का शिकार हो जाते हैं। *श्याम कुमार पोकरा* की कहानी *'दौड'*[266] में *शाहजी* की हसीन सपनों की गिरफ्त में आकर फरबू न केवल स्वयं बरबाद होता है, बल्कि प्रतिभाशाली बेटा *नंदा* का भी भविष्य अन्धकारमय बना देता है। जब *नंदा* बारहवीं की परीक्षा में प्रथम स्थान पर आये तब शाहजी की चपेट में आकर फरबू अपनी जमीन, अपनी खेत सब गिरवी में रखकर पीएमटी की कोचिंग केलिए उसे भेजता है। लेकिन भाग्य फरबू के साथ नहीं देता।

---

264 एस.आर. हरनोट :- चश्मदीद , समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2005, पृ . 111.

265 एस.आर. हरनोट :- चश्मदीद, समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2005, पृ . 116.

266 श्याम कुमार पोकरे :- दौड, हंस, मई 2009, पृ. 56.

आखिर *नंदा* भी *शाहजी* के मज़दूर बन जाता है। *देवेन्द्र चौबे* की *'सत्रह सौ चौसठ'*[267] कहानी भी गरीब, निस्सहाय *छोटेमिया* की ज़मीन गाँव के पूँजीपति *महेशचौधरी* और *हरीश चौधरी* धोखे से बाँध, तालाब आदि केलिए वसूल करता है।

दुनिया बदलने के साथ साथ दलितों की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है। लेकिन ऐसा भी देखा जाता है कि कुछ लोग अपनी परंपरा से आगे न चलते हैं। स्त्री को घर गृहस्थी और बच्चे को जन्म देनेवाली मात्र समझते हैं। *सूरजपाल चौहान* की कहानी *'अहल्या'*[268] में नायिका *संतोष दसवीं* में पूरे स्कूल में अव्वल आई है तो भी उसकी माँ-बाप अन्य दलितों के समान उच्च शिक्षा देने के बदले बेटी ऋण से जल्दी ही मुक्त होना चाहते हैं। संतोष के पिता पंडित मंगत राम से कहता है –" मैं ऐसा करुँगा तो समाज में मेरी नाक कट जाएगी, बिरादरी के सभी लोग ताली देकर हँसेगे और कहेंगे कि विवाह योग्य लडकी को शहर पढ़ने भेज दिया.... ना पंडित जी ना, मैं तो अब इसके हाथ पीले करके बेटी-ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ।"[269] शादी के बाद ससुरालवाले भी संतोष को दूसरों के मलमूत्र साफ करने की (भंगी) परंपरागत धंधे में धकेल देते हैं।

जिस दलित समाज में, समुदाय में पीढ़ी-दर-पीढ़ी अशिक्षित थी, वे लोग अब शिक्षा हासिल करके उच्च पद पर विराजमान है। इसी शिक्षा के बलबूते वे अपने भविष्य तथा आनेवाली पीढ़ी के भविष्य के बारे में भी सोच-विचार करते हैं। *सावित्री रांका* की कहानी *'जीवन-संघर्ष'*[270] एक ऐसी कहानी है जिसमें फुटपाथ पर ढाबा चलानेवाली माँ *कांती* के दृढ़ निश्चय एवं अथक परिश्रम के फलस्वरूप बेटा *सुयश* एम.बी.ए में प्रथम स्थान प्राप्त किया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विदेश में दिये लाखों डॉलर की ऑफर को

---

267 देवेन्द्र चौबे :- सत्रह सौ चौसठ , हंस, जून 2003, पृ. 57

268 सूरजपाल चौहान :- अहल्या , हंस, दिसंबर 2002, पृ. 32.

269 वहीं, पृ. 32.

270 सावित्री रांका :- जीवन संघर्ष, साहित्य अमृत, मई 2008, पृ.38

इनकार कर वह अपने ही देश में अपने माँ की व्यवसाय को बढ़ाकर पचास हज़ार श्रमिकों को रोज़गार में लगाकर एक ऐसी फुड चेन खडी कर दी जिसकी शाखाएँ देश के विभिन्न प्रान्तों में हो।

दलितों के उन्नायक डॉ. बी.आर. अंबेड़कर द्वारा दिखाये गये मार्ग –'पढ़ो, संगठित हो और विद्रोह करो' पर चलकर आज दलित शिक्षा द्वारा संगठित करके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध तथा अपने हक केलिए लड रहे हैं और संघर्ष कर रहे हैं। सभी दलित साहित्यकारों की ज़िन्दगी भी इसी राह से गुज़री हुई है। अतः दलित साहित्य में भी स्वानुभूतियों का प्रतिबिंब दर्शाना स्वाभाविक है। इसलिए ऐसा कहना अस्वाभाविक नहीं होगा कि दलित साहित्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह गैर दलितों को भी दलित पीडा का अहसास कराने में सफल हुआ है।

सुशीला टाकभौरे की कहानी *'बदला'*[271] में अपनों पर हो रही अत्याचारों एवं उत्पीडनों के विरुद्ध दलित लोगों का प्रतिरोध एवं प्रतिशोध को व्यक्त करता है। कहानी में स्कूल में पढ़नेवाले छोटा बच्चा 'कल्लू' को ऊँची जाति के लोग मारपीट करके बेहाल कर देते हैं। तब गाँव के सभी दलित संगठित होकर लाठी का जवाब लाठी से ही देता है। कहानी में छौआ माँ द्वारा कहानीकार दलितों के विद्रोह या आक्रोश को यों प्रकट करता है –"अब हम किसी से नहीं डरेंगे... हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे.... वे शेर है तो हम सवा शेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसा आयेगा कि लोग हमसे डरेंगे। मेरा कल्लू इसी गाँव में रहेगा, शेर बनकर।"[272] सुशीला टाकभौरे दलितों को अपनी कहानी

---

271 सुशीला टाकभौरे :- बदला , हंस, अक्तूबर 2008, पृ. 52

272 वहीं, पृ. 57

द्वारा आह्वान देती है –" हम सब मिलकर रहेंगे तो हमारी ताकत बहुत बड़ी ताकत बनेगी.... एकता की ताकत से ही हम दुश्मनों से बदला ले सकते हैं।"[273]

4.9) पारिस्थितिक संकट

वर्तमान समय में पर्यावरण समस्या ने एक गंभीर रूप धारण किया है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के चलते व्यापक रूप में पारिस्थितिक संपदा का विनाश हो रहा है। विकास के नाम पर की जानेवाली प्राकृतिक शोषण एवं पारिस्थितिक उन्मूलन के विरुद्ध कहानीकारों ने अपना कलम चलाया है।

भूमण्डलीकृत दुनिया में सबके सिर पर आगे बढने का धुन सवार है और उसकी पूर्ती केलिए मानव पर्यावरण को कुचल देते हैं। पेड-पौधों को काटकर कंक्रीट के बडे बडे इमारतें बनाते हैं। *'एक कोई और'* कहानी के द्वारा कहानीकार कहते हैं –"हर कहीं भीड की बहती नदियाँ, कचरे के पहाड, कंक्रीट के जंगल और प्रदूषण ही प्रदूषण दिखाई है"।[274] उपयोगवादी मानसिकता से ग्रसित आज का मानव प्रकृति पर अत्याचार कर रहे हैं। लेकिन उस समय वे यह नहीं सोचते कि इसका दुष्परिणाम हमें ही भोगना पडता है। आज हम इसी विकट स्थिति पर पहूँचते हैं। ग्लोबल वर्मिंग, भूकम्प, बाढ, अकाल तथा नये-नये बीमारियों से मनुष्य तडप रहा है।

नरेन्द्र नागदेव की कहानी *'गिद्ध'* में सूखा पडा गाँव से लोगों का पलायन का चित्रण है। कहानीकार उन पलायित लोगों का विमर्श नायक 'बावरा'के शब्दों से कहता है- "सूना गाँव ज्यादा आत्मीय होता है। उसका ख्याल रखना होगा ना?... गाँव सुनो, तुम्हें अपने आपको इस तरह अकेला महसूस करने की जरुरत नहीं है... मैं हूँ ना...

---

273 वहीं – पृ. 57.

274 अमरीक सिंह दीप :- एक कोई और , हंस अगस्त 2001, पृ. 35

तुम्हारी इन्हीं गलियों ने आखिर पनाह दी है मुझे...तुम्हारी इन्हीं वृक्षों की टहनियों ने मीठे फल खिलाए है मुझे"।[275] ऐसा देखा जाता है कि अधिक्तर लोग जब कोई संकट आते हैं तो ज्लद ही वहाँ छोड कर अन्य जगहों की ओर जाते हैं। विरले ही ऐसे जन होते हैं जो गाँव में रह कर उस हालत को सुधारना चाहते हैं। कहानी में भी लोग सूखे पडे गाँव को छोडकर दूसरा जगह जहाँ पानी, भोजन मिल जायें वहाँ की ओर पलायन करते हैं। वे कभी यह नहीं सोचते कि इस भीषण समस्या से कैसे आगे बढे। कहानी में एकमात्र *बावरा* धरती की गर्मी को मिटाने केलिए कुँआ खोदता है और इस भयानक तपिश से धरती को भी मुक्ति दिलाता है। कहानी बंजर हो रही भारतीय गाँव की त्रासद स्थिति की ओर इशारा करती है।

कीटनाशिनियों का जरुरत से ज्यादा उपयोग, बडी-बडी कारखानों से निकल रही धुएँ आदि ग्रामीण वातावरण को भी विषैला बनाया है। मशीनों के आगमन से पहाड गंजा होता गया, जंगलों का सफाया होने लगा। विकास का नाम कहकर नदी, तालाब आदि का दोहन करके बडे-बडे इमारतें तथा कारखानें बनाया जाता है। *जयनंदन* अपनी *'कल्याण का अन्त'* नामक कहानी में *कल्याण* तालाब का दयनीय अन्त तथा उसके स्थान पर बडे इमारत खुले जाने का वर्णन किया है। कहानीकार कहते हैं –" तालाब की अहमियत रुपयों-पैसों से नहीं आँकी जा सकती है और अगर रुपयों से आँकी जाये तो उसके ज़रिए जो मानवीयता पर परोपकार हो रहा है, वह अरबों-खरबों से भी कहीं ज्यादा है। जब एक कुआ बन जाता है या तालाब वह किसी की निजी सम्पत्ति नहीं रह जाता, वह सार्वजनिक हो जाता है।"[276] लेकिन स्वार्थ एवं धनलोलुप मनुष्य को तालाब के सूखे पड जाने से अत्यधिक खुशी होती है कि ज़मीन बेचकर करोडों रुपया कमा

---

275 नरेन्द्र नागदेव :- गिद्ध , कथादेश, सितंबर 2010 पृ.14

276 जयनंदन :- कल्याण का अन्त , नया ज्ञानोद, मार्च 2004, पृ. 54

सकें। यही चिंता जब *कोचाई* के बेटे एवं पत्नी में हुई, *कल्याण* का अन्त होने लगा। शहर के बडे उद्योगपति *प्रदीप डोगरे* ट्रक, डोज़र, और, डम्फर की सहारा लेकर मिट्टी तोपा गया और किनारा एक बोर्ड लगाया- *साइट ऑफ डोगरा बिल्डर्स एण्ड कॅन्ट्रैक्टर्स* । कहानी में तालाब का सूखा होने से प्राकृतिक जीवों की बदहालत का भी वर्णन है –" कल्याण तिल-तिल दल तोड रहे किसी प्रिय जन की तरह कराहता हुआ बिछा होता। तट पर आकर कुछ प्यासे जानवर अपनी अबोध आँखों से शून्य को निहारते और फिर वापस हो जाते। जल-विहार करनेवाले पक्षी गाछ की फुनगी से ही दुर्दशा निहारकर स्यापा कर लेते। कुछ बडी मछलियाँ, जिनकेलिए पेंदी में बचा थोडा-सा पानी कम पड रहा था, छटपटाते-तड़फड़ाते दिख जातीं"।[277]

तरसेम गुजराल की *'पुराना आदमी'* कहानी में *नीरजा* अपने दोस्त *सुरिन्दर* के साथ गाँव आती है। उसने पहले कभी गाँव नहीं देखा था। गाँव आते ही उसे पहले इस बात पर हैरानी हुई कि रास्ते के दोनों तरफ कोई पेड नहीं था। वह कहती है " प्रकृति और पर्यावरण का विनाश शहर में तो होता ही है गाँव भी इससे नहीं बच पाया।"[278]

पानी के बिना जीवन का अस्तित्व असंभव है। लेकिन आज पूँजीपति वर्ग पानी पर भी कब्जा करके दुनिया को अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास कर रहे हैं। एक और पानी की किल्लत से किसानों को सिंचाई केलिए भी जल प्राप्त नहीं होता तो दूसरी ओर पंचसितारा होटलों में टब स्नान, रेन डान्स, तैराकी के तालाब तथा बडी- बडी मॉलों, व्यापार केन्द्रों में सौन्दर्य सृष्टि केलिए *वाटर फौन्डैन* और मनोरंजन हेतु *वाटर तीम पार्कों* का निर्माण करके पानी की ऐयाशी का रहा है। विकास के नाम पर बडे-बडे बाँधों का निर्माण करके ग्रामीण जनता को वंचित कर रहे हैं। *रमेश शर्मा* की *'शायद तुम उसे*

---

277 वहीं – पृ. 58

278 तरसेम गुजराल :- पुराना आदमी , नया ज्ञानोदय – जून 2009, पृ.42.

चाहने लगे थे'[279] कहानी इसी पर आधारित है। बाँध केलिए गाँववालों को खाली करवाते हैं।

उषा ओझा की '*आखिरी निशानियों को बचा लो*' कहानी में दक्षिणी आंडमान स्थित हैवलॉक द्वीप की दुर्दशा पर विचार प्रकट किया है –"हैवलॉक द्वीप के जंगलों में अब आदमखोर मानव नहीं है। जंगली जानवर भी लगभग ख़तम ही है। इस द्वीप को पर्यटन विभाग के प्रयास से व्यावसायिक बनाया जा रहा है।"[280]

हम जिस तेजी से वनों एवं पेड़ों का विनाश करते जा रहे है, उससे हमारा ही जीवन दुसाध्य हो रहा है। मनुष्य का यह विचार गलत तथा खतरनाक है कि वह प्राकृतिक एवं नैसर्गिक संसाधनों का विकल्प बना सकता है। *शक्ति त्रिवेदी* की '*उपग्रह में*' नामक कहानी में *पंपोश* कहती है " ये पेड़ कितने अच्छे है इनके पास आते ही मुझे कितना सुख मिलता है। जो सुख और तृप्ति मुझे ये वृक्ष देते हैं, वह आदमी नहीं दे सकता।"[281] *संदीप गुप्ता* की कहानी '*पेड पेड पानी दें*'में नायक रमेश पेड और पानी की आपसी संबन्ध के बारे में कहता है –" पेड और पानी ये जीवन की दो ऐसी सच्चाइयाँ है जो एक-दूसरे से गहरी जुडी हुई है। जिस तरह बोतल में बन्द पानी कितना ही साफ क्यों न लगे जीवन की सच्चाई नहीं है। खुला, बहता, स्वच्छ पानी ही जीवन की सच्चाई है। वैसे ही खुले आँगन में, सडकों व नदियों के किनारे लगे पेड जीवन की सच्चाई है। जहाँ पानी होगा, वहाँ पेड खुशी-खुशी बढेंगे, लहरायेंगे। जहाँ पेड वहाँ पानी भी राजी-खुशी ठकरेगा और बरसेगा भी।"[282] बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गिद्ध दुष्टि से

---

279 रमेश शर्मा :- शायद तुम उसे चाहने लगे थे , अक्षरपर्व - अप्रेल 2006, पृ.45.

280 उषा ओझा :- आखिरी निशानियों को बचा लों , हंस – जनवरी 2010, पृ. 50.

281 शक्ति त्रिवेदी :- उपग्रह में , समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2009, पृ. 86.

282 संदीप गुप्ता :- पेड पेड पानी दे -, कथादेश – जुलाई 2002, पृ. 85.

प्रकृति और प्राकृतिक साधनों का शोषण हो रहा है। उसने संसार की नदियों को कारखाने के मल से जहरीला बना दिया है।

विकास और शहरीकरण के बहाने मनुष्य जंगलों एवं वनस्थलियों का विनाश कर रहा है। इससे वहाँ बसनेवाले पशु-पक्षियों का आवासस्थान बिगड जाता है। लेकिन प्रकृति प्रेमियों ने कानून एवं शासन की सहायता से, महानगर की अति उद्योगिकरण की लालची नज़रों से पहाडियों, वनस्थलियों को बचाने का सुकर्म भी करते रहते हैं। इतना ही नहीं वनविभाग, 'ज़ुओलजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' आदि विभाग इनके संरक्षण केलिए कार्यरत है। इतने सब होते हुए भी हम मनुष्य में अधिकतर लोग प्रकृति से आत्मीय संबन्ध नहीं रखते हैं। *'पक्षी सुरक्षा वन'* नामक कहानी द्वारा *संतोष साहनी* मानव के इस व्यवहार की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। प्रस्तुत कहानी में अशोक अपनी बच्ची की बरसगांठ 'पक्षी सुरक्षा उद्यान' में मनाता है। लेकिन वहाँ पार्टी में इकट्टे व्यक्तियों में से किसी ने भी कोठी के बाहर की वनस्थली की ओर जाने का इरादा प्रकट नहीं किया। पार्टी ख़तम होते ही सब महानगरी की तनाव, तेजी, कम्पीटीशन भरी माहौल की ओर लौटा। तब कहानी की नायिका सरिता अपनी निराशा यों व्यक्त करती है –" बच्ची का जन्मदिन पक्षी सुरक्षा वन में मनाने केलिए, बच्चों का और अपना संपर्क संबन्ध प्रकृति एवं वनप्राणियों, पक्षियों से क़ायम रखने बढाने केलिए ही तो हम सभी आएं थे, आए होंगे न! पर क्या, हम प्रकृति के पास, उसके संपर्क संबन्ध में आये? नहीं।"[283]

यहाँ ध्यान देने की एक ओर बात यह है कि पार्टी के बहाने वे लोग फिल्मी संगीत की गूँज से प्रकृति और पक्षियों की शान्त वातावरण को प्रतिकूल भासती है। इन प्रतिकूल परिस्थितियों से तंग आकर पक्षी वहाँ से उड जाते हैं और जब वातावरण पुनः

---

283 संतोष साहनी :- पक्षी सुरक्षा वन , हंस - फरवरी 2006, पृ. 65.

शान्त हो जाता है तब वे उतर रहे हैं। जब सभी लोग वहाँ से वापस चला गया तब सरिता ने देखा –" एक-एक करके, पक्षी, अनेक रंगों-रूपों, आकारों-बोलों के, उतर रहे थे बेफिक्री से, अपनी पहचानी वृक्ष शाखाओं पर, घास भरी ढलानों पर, चट्टानों पर....।"[284]इस तरह के फैन्टसी के ज़रिए कहानीकार पाठकों के मन में पर्यावरण संरक्षण का अवबोध कराता है।

4.10) मानव जीवन पर प्रौद्येगिकी एवं तकनीकी का वर्चस्व

आज के इस व्यस्त, यांत्रिक प्रतिस्पर्धा के युग में चैन से सोने केलिए, हँसने केलिए, शादी करने केलिए या बच्चा पैदा करने केलिए मनुष्य के पास समय नहीं है। उसके पास बाकी सब कुछ है पर समय का अभाव है। समय के रफ्तार से आगे मानव का यह दौड और उससे उपजी समस्याओं को कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में प्रतिबिंबित किया है।

कहानी *'निद्राखोर'* विश्व बाज़ार की संस्कृति में पूँजी अर्जित करने संबन्धी पेशेगत मनोदशा को व्यक्त करती है। आज बाज़ार में हमें जो चाहे वह मिल सकते हैं –" यहाँ सबकुछ बेचा जा सकता है, यहाँ तक कि मन की शांती भी किसी अन्य प्रोडेक्ट की तरह बाज़ार में उतारी जा चुकी है।"[285] भूमण्डलीकरण के इस दौर में बाज़ार में हवा, जल आदि को एक *प्रोडेक्ट* के रूप में बेची जा रही है जो हमें प्रकृति से निर्बाध रूप से मिलती थी। प्रस्तुत कहानी में *विवेक भाटी 'शुद्ध हर्बल नींद'* नामक प्रोडक्ट का कारोबार शुरू करता है। वह कहता है –" क्या हम विशुद्ध निद्रा को मिनरल वाटर की बोतल में भरकर लोगों को मुहैया नहीं करा सकते। काफी अच्छी कीमत मिलने की पूरी संभावना

---

284 वहीं , पृ. 65

285 राजेश जैन :- निद्राखोर , जनवरी 2004, पृ. 30.

है।"[286] बाज़ार का तंत्र भी यहाँ व्यक्त करता है कि " बिज़नस का मतलब है जो चीज़ जहाँ ज्यादा उपलब्ध हो, उसे कम दाम में खरीदकर वहाँ पहूँचाओ जहाँ वह न मिलती है या उसकी कमी हो.. और फिर मनचाहे दाम वसूल लो।"[287] कहानी में कृत्रिम रक्त का निर्माण, बी.आइ.एम.एस (बॉडी इनबिल्ट मोबाइल सिस्टम) याने मोबाइल फोन का चिप अपने बॉडी में प्लान्टेड करना आदि के बारे में भी बताया है।

आज मानव की हर समस्या का हल बाज़ार में उपलब्ध है। जैसे वज़न कम करना, भाग्य तराशना, खूबसूरती बढाना या खुशियाँ मिलना। तत्कालीन खुशी एवं शान्ती भी बाज़ार में उपलब्ध है। *'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो'* कहानी इस संदर्भ में प्रासंगिक है। हमारे समाज में आज 'लाफ्टर क्लब' की आवश्यकता बढ रही है क्योंकि मनुष्य अपने इस यांत्रिक, अनुशासित जिन्दगी के चक्कर में हँसने को भी भूल गये हैं। 'हँसी' मानव जीवन का एक अत्याज्य तत्व है जो आज के प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया में मिटती जा रही है। इस आपाधापी युक्त परिवेश से गुजरते व्यक्ति से स्वच्छ निर्मल एवं उन्मुक्त हँसी की प्रत्याशा करना बेतुक की बात है। *कमला चमोला* की *'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो'* कहानी की नायिका अपनी जिंदगी से गायब हुई हँसी को वापस लेने केलिए 'लाफ्टर क्लब' जाती है। वहाँ लोग शर्म लिहाज ताक पर रख ज़ोर ज़ोर से ठहाके लगा रहे हैं।। नायिका ने भी प्रशिक्षक के शिक्षण से अपना शिष्य धर्म पूरा किया। कहानीकार हमें यह हिदायत देता है कि –" कितनी सहज, सरल, निशुल्क व्यवस्था कर रखी है ईश्वर ने स्वस्थ सबल रहने की। इस टॉनिक को व्यर्थ न जाने दें, भरपूर प्रयोग करें इसका।"[288] हम बाज़ार से इस तरह खो गये हैं कि हम अपने नैसर्गिक प्रक्रियाओं को भी भूल गये हैं।

---

286 वहीं – पृ. 31.

287 वहीं – पृ. 31.

288 कमला चमोला :- हँसो, हँसो, जल्दी हँसो , हंस, नवंबर 2003, पृ. 56

इसका लाभ उठाकर जीवन के नैसर्गिक प्रवृत्ति और प्रक्रियाओं को भी बाज़ार में एक प्रोडक्ट के रूप में बेची जा रहीं है। 'आर्ट ऑफ लिविंग'इसका एक उदाहरण है। *महेश अनघ* की *'अब हँसो'*[289] कहानी में भी कार्यालय के तनावपूर्ण माहौल में रोबोट जैसी जिन्दगी बिताने वाले कर्मचारी लोग अपना एक दिन हँसने केलिए अलग रखते हैं।

प्रेम, मनुष्य जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। इसके बिना मानक का जीवन अधूरा है। आपसी प्रेम, दो व्यक्तियों के परस्पर मेल-मिलाप से होता है। लेकिन आज के इस तकनीकी के युग में व्यक्ति के मेल मिलाप सूचना-प्रौद्योगिकी के नूतन उपकरणों द्वारा हो रहा है। विश्व के किसी भी कोने में हो, इनके माध्यम से अपना संबंध कायम कर सकते हैं। हम आज इस मोड पर आ खडे हैं, जहाँ प्रेम, आपसी संबंध तथा विवाह तक मोबाइल, कंप्यूटर द्वारा हो रहा है। ये उपकरण एक मायावी स्क्रीन है जिसके जाल में अधिकतर लोग फँसते हैं और न्यूनतम लोग बचते हैं। कहानी *'कोई मेरा अपना'* में कहानीकार *सुषमा जगमोहन* इसके बारे में अपना विचार यों व्यक्त करती है –" प्रेम का नया स्टाइल यही है। पहले अनंत स्क्रीन पर दिखाई देता है। फिर वह भी स्क्रीन पर दिखाई देती है। थोडी देर में ही दोनों को अहसास होने लगता है, वे साथ-साथ हैं। इस डिजिटल स्क्रीन पर वे कहीं भी साथ होने का अहसास कर सकते हैं। और फिर प्रेम का खेल शुरू। इमेजिनरी लव या कुछ भी नाम दीजिए इसे, लेकिन इस नई जेनरेशन को इसी प्रेम का नशा है।"[290] फेसबुक, ट्विटर, वाट्सअप, ई-मेल इन सबके मायाजाल में फँसे हुए है आज की पीढ़ी।

हम विकास के उत्तुंग श्रृंग पर पहूँच गये हैं। हर नैसर्गिक प्रवृत्ति का बहुरूपी विकल्प प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी के सहारे विकसित किया है। हमारे हर कमज़ोरी, एवं

---

289 महेश अनघ :- अब हँसो , अक्षरपर्व, फरवरी 2006, पृ. 49.

290 सुषमा जगमोहन :- कोई मेरा अपना , हंस, अक्टूबर 2004, पृ.59.

अधूरेपन का पूर्ती भी इस तकनीकी विकल्पों के ज़रिए संभव है। आज हम इस स्थिति तक पहूँच गये हैं कि स्त्री को गोद भरने केलिए पुरुष के साथ रहने की कोई ज़रूरत नहीं। हम इस हद तक व्यस्त हो चुके हैं कि समय पर शादी करना, माँ बनना, बच्चों का पालन-पोषण करना दूर की बात बन गये हैं। इस अवसर पर बाज़ार ने विज्ञान एवं तकनीकी की सहायता से ऐसी सुविधा को हमें उपलब्ध कराया, जिससे हम अपने 'स्पर्म' को दीर्घकाल तक सुरक्षित रख सकें, ताकि समय आने पर इसका इस्तेमाल कर सकें। प्रस्तुत कहानी में इसका भी संकेत मिलता है। कहानी में नायक *अनंत* स्पेस इंजिनीयर है और अब वह मंगल में रहता है। उसकी प्रेमिका *इवा* दिल्ली के मशहूर कॉस्मेटिक सर्जन है। एक दिन उसने *अनंत* से कहा –" अनंत, मैं माँ बनना चाहती हूँ।..... तो दिक्खत क्या है डार्लिग, बन जाओ न। मेरे स्पर्म बैंक में रखे हैं न।"[291]

आज मनुष्य चाँद में भी जीवन तलाशते हैं। एक दिन ऐसा जरूर आएगा, जब पृथ्वी पर आबादी इतनी बढ जाएगी, मनुष्य को बसाने केलिए उपग्रह खोजने होंगे। *शक्ति त्रिवेदी* की कहानी *'उपग्रह में'*[292] नूतन अपनी पत्नी *पंपोश* के साथ हनिमून मनाने केलिए उपग्रह जाते हैं, जहाँ सुंदर मकान और खाने-पीने की सुविधायें मौजूद हो।

आज हमारे पृथ्वी में आबादी इतनी बढ़ गयी कि स्वयं भूमि भी इसे वहन करने में असफल हो जाएगा। इस समस्या का हल करने केलिए हरेक देश अपने कानून के द्वारा कई योजनायें की है, ताकि आबादी को कम करें। आज भारत में भी 'परिवार योजना' चल रहा है, लेकिन अब तक इसे सख्त एवं दबाव से लागू नहीं किया है। भविष्य में भारत में भी शायद यह लागू हो सकता है कि मनुष्य का बुनियादी तत्व 'प्रजनन प्रक्रिया' पर भी सरकार का कराल हस्त पड जायें, जैसे आज हमारी जल,

---

[291] सुषमा जगमोहन :- कोई मेरा अपना , हंस, अक्टोबर, 2004, पृ. 64.

[292] शक्ति त्रिवेदी :- उपग्रह में , समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल, 2009, पृ. 83.

ज़मीन एवं प्राकृतिक संसाधनों पर हो रहा है। इसी आशंका को *दिव्या माथुर* ने अपनी *'2050'* नामक कहानी में चित्रित किया है। कहानी में लंदन स्थित भारतीय प्रवासियों को नैसर्गिक ढंग से बच्चा पैदा करने को 'आइ क्यू' टेस्ट पास करना ज़रूरी है। यदि पास हो जाये तो 'समाज सुरक्षा परिषद' उन्हें बच्चा पैदा करने की अनुमति देगी। उसी प्रकार वहाँ आत्महत्या करने को भी 'आप्लिकेशन फार्म' भरना पडता है। यह सिर्फ एक कहानी मात्र नहीं बल्कि सोचने का एक विषय भी है कि अपनी निजी जिंदगी में दूसरों का दखलंदाज़ इस हद तक बढ़ रहे हैं कि हमारी इच्छायें, हमारा निर्णय सब उनके हाथों में हो। कहानी में *वेद*इसके विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट करता है –" ये सरकार क्या अपनी मर्जी से कुछ भी कर सकती है? आज हम अपनी मर्जी से बच्चे नहीं कर सकते, कल ये कहेंगे कि हम क्या खाएं, क्या पहनें, कब उठें, कब बैठें, ये तानाशाही कब तक चलेगी।"[293] आज भारत में हम यह अनुभव कर रहे हैं।

कहानी की पंक्तियों के बीच ऐसी बातें छिपी है जो वर्तमान समय में ताकतवर देश और सरकार आम व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन एवं मौलिक स्वतंत्रता और अधिकारों में सरकारी नीति-न्याय-कानून के ज़रिए दखलंदाज़ा कर रहे है। वर्तमान संदर्भ में भारत और पूरे विश्व में ऐसी घटनायें घट रही हैं जो इस बात का सबूत है कि भविष्य में मानव की जो मौलिक प्रवृत्ति है, उसपर कोई सरकार, एजेन्सी या कोई अफ़सरों का आँख टिका रहेगा।

4.11) भाषाई संकट

एक राष्ट्र की अस्मिता उस राष्ट्र की भाषा से जुडी हुई है। देश की सांस्कृतिक अस्मिता और संवेदनात्मक चैतन्य भाषा में निहित होता है। लेकिन आज सूचना

---

[293] दिव्या माथुर :- 2050 , हंस दिसंबर 2010, पृ. 15.

तकनीकी ने औद्योगिक और व्यावसायिक जगत के साथ साथ भाषाई चेतना पर भी हमला करने लगा। आज अंग्रेज़ी का वर्चस्व निरंतर बढ रहा है। वैश्वीकृत व्यापार की भाषा अंग्रेज़ी होने के कारण दुनिया के लगभग सभी पिछडे और अल्पविकसित देश उसी की गिरफ्त में है। इस वजह से आज दुनिया के शिखर पर अंग्रेज़ी का पश्चम बडी शान से लहरा रहा है। भारत में अंग्रेज़ी का अतिक्रमण शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाओं, साहित्य, सूचना-प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में अधिक देखा जाता है।

4.11.1) शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाओं में अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व

भूमण्डलीकरण के ज़रिए अमेरिका तथा पश्चिमी ताकतवर देश अपनी भाषा, संस्कृति और विचार को दूसरे देशों की भाषा, संस्कृति और विचार पर थोपने एवं प्रसारित करने में अटूट प्रयास कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप अंग्रेज़ी की खाद से अंकुरित नन्ही पीढी तथा विकसित हो चुकी युवा पीढ़ी अपनी मातृभाषा का निरसन करती है। इस स्थिति की सचाई को देश में बढती हुई अंग्रेज़ी स्कूलों को देखकर समझा जा सकता है। जो देशी भाषाओं में अपना कामकाज निपटाते है, अंग्रेज़ीपरस्त हिन्दुस्तानी उन्हें एक घटिया इंसान समझते हैं। *ओमप्रकाश अवस्थी* की *'सगी-सौतेली'* कहानी का नायक जब अंग्रेज़ी स्कूल के शिक्षक पद के साक्षात्कार केलिए जाता है तब वहाँ के प्राचार्य उससे पूछते हैं –" जब आप धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोल नहीं सकते तो आप को यहाँ केलिए कैसे चुना जा सकता है।"[294] नैतिक मूल्य, राष्ट्रीयता की भावना, अपनी संस्कृति के प्रति लगाव आदि महत्वपूर्ण बातें नायक के जीवनयापन के सम्मुख नत हो जाते हैं और एक वर्ष के लगातार परिश्रम के बावजूद वह अपनी फर्राटेदार अंग्रेज़ी के कारण उसी स्कूल में कहानीकार के मत में " उस प्रतिष्ठित कारखाने में हिन्दुस्तानी बच्चों की धमनियों में

---

[294] ओमप्रकाश अवस्थी :- सगी-सौतेली , भाषा, सितंबर-अक्तूबर, 2002 पृ. 74.

बहते खून में घुली हिन्दी को निकालने और उसकी जगह अंग्रेज़ी को ठ्स-ठ्स कर भरने की मजदूरी में लग गया।"[295]

कहानी में आज के शैक्षणिक संस्थाओं में हो रही घोर हिंदी (मात्रभाषा) विरोध पर भी विमर्श उठाया है। स्कूलों में हिंदी बोलनेवाले बच्चों को सज़ा देती है। यहाँ भी कक्षा में हिंदी बोलने के कारण *राहुल* को बेतों की सजा देती है। *राहुल* नायक से कहता है –" मेरी सौतेली माँ नहीं चाहती कि मैं अपनी माँ को प्यार करुँ। पर मेरा मन नहीं मानता। मैं अपनी माँ को प्यार करने को छटपटाता रहता हूँ। मेरी माँ सीधी-सादी है पर सौतेली माँ उतनी सुंदर न होते हुए भी चमक-दमक वाली है। उसने ही मेरी माँ के खिलाफ पापा के कान भर दिए हैं। तभी तो एक बार मुझे माँ से बोलता देख उन्होंने बेंतों की सजा दी थी।"[296] यहाँ कहानीकार अपनी कहानी के द्वारा हिंदी को माँ और अंग्रेज़ी को सौतेली माँ की विशेषता से संबोधित करता है।

बाज़ारीकरण से उत्पन्न विकृत भाषा संस्कृति का चित्रण *चंदन पाण्डेय* की *'सिटि पब्लिक स्कूल, वाराणसी'* कहानी में देखा जा सकता है- " तुम और तुम्हारी निकी मेरे ग्रूप में रहो न रहो, आई लीस्ट बाँदर। इफ यू कैन मेक हर आउट ऑफ माई ग्रूप दैन करो।"[297] *आरती झा* की कहानी *'सवाल'*[298], *शर्मिला बोहरा जालान* की *'परिवेश'*[299] आदि में भी अंग्रेज़ी परस्त शैक्षणिक संस्थाओं का चित्रण है। " भारतीय अपने रक्त और मांस से भारतीय रहेंगे, लेकिन वास्तव में वे हमारे ही होंगे क्योंकि हम उन्हें इग्लिश में शिक्षा-दीक्षा देंगें" मैकाले ने ऐसा कहा था। परिणाम स्वरूप आज के वातावरण और

---

295 वहीं – पृ. 75

296 ओमप्रकाश अवस्थी :- सगी-सौतेली , भाषा, सितंबर-अक्तूबर, 2002, पृ.78.

297 चंदन पाण्डेय :- सिटी पब्लीक स्कूल, वाराणसी , नया ज्ञानोदय, मई 2007, पृ.101

298 आरती झा :- सवाल , वागर्थ, जनवरी 2010, पृ. 80.

299 शर्मिला बोहरा जालान :- परिवेश , वागर्थ, सितंबर 2010, पृ. 63.

शिक्षा व्यवस्था ने चार वर्ष के बच्चे को भी सयाना बना दिया है। एक और बात यह है कि इस भूमण्डलीकृत युग में शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है। इसका *चित्रण चंदन पाण्डेय* की *'सिटि पब्लिक स्कूल, वाराणसी'* में मिलता है- " स्कूल की डायरक्टर की फैमिली पहले सुनारी और ठेकेदारी का काम करती रही है, पर जब वहाँ नुकसान हुआ तो वे शेयर मार्केट और स्कूल के बिजनेस में उतर आये।"[300] हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसा बना दी गई है कि हम अपनी भाषा की संजीवनी शक्ति को भूल गये है। अर्थात् अपनी भारतीयता को भूल गये हैं।

4.11.2) भाषा का बदलता तेवर

बाज़ारु प्रवृत्ति ने सबसे पहले भाषा को ही प्रदूषित किया है। अखबार, आकाशवाणी, टेलिविशन आदि जनसंचार माध्यमों द्वारा बाज़ार ने व्यावहारिक भाषा पाठकों तक पहूँचाने के बहाने एक मिलावटी भाषा याने 'हिंग्लिश' का सृजन किया है। हमारी निज भाषा हिंदी अब शहरी मध्यवर्गीय समाज में 'हिंग्लिश' का रूप धारण करती जा रही है। फलस्वरूप भाषा की मौलिकता नष्ट हो रही है। हिन्दी भाषा पर अंग्रेज़ी के वर्चस्व के कारण आज हिंदी वाले भी हिंदी शब्दों के स्थान पर अंग्रेज़ी शब्द का इस्तेमाल कर रहे हैं। सर्जनात्मक साहित्य की भाषा में जीवन शक्ति अधिक है, लेकिन बाज़ारीकरण के कारण आज यही सर्जनात्मक भाषा सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुई है। साहित्यकार भी भूमण्डलीकरण के षड्यंत्र के शिकार से मुक्त नहीं हैं। वे भी अपनी रचनाओं में जाने-अनजाने इस खिचडी भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। जैसे *'सिटि पब्लिक स्कूल, वाराणसी'*[301] और *दुष्यंत* की कहानी *'प्रेम की उपकथा'*[302] में पात्रों के संवादों के

---

300 चंदन पाण्डेय :- सिटी पब्लीक स्कूल, वाराणसी , नया ज्ञानोदय, मर्ह 2007, पृ. 100.

301 वहीं

302 दुष्यंत :- प्रेम की उपकथा , कथादेश, मई 2010, पृ. 60

अलावा संदर्भों के विवरण में भी अंग्रेज़ी शब्द का प्रयोग किया है- " शोभिता आ चुकी है। 'एम्ब्रोयडरीवाल''वाइट' कुर्ते और 'ब्ल्यू डेनिम' में है, गले में क्रोशिये से बने 'ग्रे स्टॉल' में अच्छी लग रही है बहुत। प्रायः 'पोनिटेल' में होती है।"[303] कहानी के दोनों पात्र ज्यादातर अंग्रेज़ी में ही बातें करते हैं- "यू हैव लॉस्ट योर जॉब, दैन व्हाय आर यू हाइडिंग एंड लाइंग इट फ्रॅम मी, यार..... यू विल गैट अनदर जॉब यार, इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है?"[304]

सुशांत सुप्रिय की *'चश्मा'*[305] कहानी का नायक *साहित्यकार विज्ञानेश्वर* कहता है —"जिस भाषा में मैं पढ़ता, लिखता, सोचता और सपने देखता हूँ उसे दरिद्रों की भाषा माना जाता है। लाल बत्ती लगाये सत्ता और संपन्नता की प्रतीक किसी दूसरी ही भाषा में जीनेवाले देश के नीति-नियंता इस दरिद्रों की भाषा में लिखी गई मेरी यह सत्यकथा कभी पढ़ेंगे, मुझे इसमें सन्देह है।"[306] आज लोग अंग्रेज़ी बोलने, पढ़ने और लिखने वाले व्यक्ति को महान् मानते हैं। भारतीयों का यह गलतफहमी है कि अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा को त्यागकर अंगेजी को अपनाना आधुनिकता का बोध है। वर्चस्व की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी के प्रति मोह इसके पीछे कायम रहे हैं। अंग्रेज़ी के मोह में पडकर हम अपनी भाषाओं की बलि चढा रहे हैं।

हमारा स्वाधीनता संग्राम हिंदी को हथियार बनाकर लडा गया था, किन्तु आज हम उसे ही नष्ट करने पर तुले है। हिन्दी की इस ताकत को 'क्रियोलीकृत' भाषा द्वारा तोडा जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अंग्रेज़ी और रोमन लिपि को बहुत ही चालाक

---

303 वहीं, पृ. 60.

304 वहीं – पृ. 60

305 सुशांत सुप्रिय :- चश्मा , भाषा, जनवरी-फरवरी 2010, पृ.135

306 वहीं, पृ.142.

तरीके से देश पर थोपा जा रही है। आजकल हिंदी को रोमन लिपि में लिखने की वकालत भी कुछ लोग करने लगे हैं।

4.11.3) सूचना प्रौद्योगिकी युग में भाषाई संकट

सूचना प्रौद्योगिकी का गहरा प्रभाव वर्तमान सामाजिक जीवन पर पड़ा है।। *पंखूरी सिन्हा* की *'किस्सा ए कोहिनूर'* कहानी की नायिका *जयन्ती* के द्वारा लेखिका सही और स्वस्थ भाषा के अभाव में विचारों के सही सोच के रूपायन से वंचित रह जाने तथा व्यक्ति की अपनी अस्मिता से कट जाने की स्थिति का संकेत देती है। *जयंती महापात्र* का परिचय लेखिका इसप्रकार देती है कि "नाम जयन्ती महापात्र, उम्र 26 वर्ष, मातृभाषा उडिया, राष्ट्रभाषा हिंदी, शिक्षा की भाषा अंग्रेज़ी। घर में बोलचाल की भाषा अंग्रेज़ी-हिंदी मिश्रित उडिया, दोस्तों से बोलचाल की भाषा अंग्रेज़ी-मिश्रित हिंदी, दफ्तर में बोलचाल की भाषा हिंदी मिश्रित अंग्रेज़ी। लेकिन जिस भाषा से जयन्ती की पहचान है वह है 'जावा'। कंप्यूटर लैंग्वेज जावा जिसकी प्रोग्रामिंग में जयन्ती को महारत हासिल है।"[307] मानव भाषा पर तकनीकी एवं कंप्यूटर भाषा का अधिक्रमण यहाँ द्रस्टव्य है। सॉफ्टवेयर बाज़ार की इसी भाषा के बल पर जयन्ती अमेरिका स्थित बडी कंपनी के 'बिजनेस असोसिएट' का पद हासिल करती है। सूचना प्रौद्योगिकी के बढते प्रसार के साथ-साथ आज लोग मौखिक संवाद से ज्यादा मोबाइल, इंटरनेट के 'वाट्स आप', 'एस.एम.एस', 'फेसबुक', 'ई-मेल' द्वारा अपना विचार प्रकट करता है। यहाँ भाषा अपनी पूर्णता को खो रही है। लोग अपनी सुविधा केलिए शब्दों और वाक्यों के संक्षित रूप का प्रयोग कर रहे हैं।

---

[307] पंखूरी सिन्हा :- किस्सा ए कोहिनूर , कथादेश, अप्रैल 2006, पृ. 40.

किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास उसकी अपनी भाषा के माध्यम से ही संभव है। 'भूमण्डलीकरण का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव' लेख में *अमर सिंह वधान* ने ऐसा लिखा है कि " सांस्कृतिक आक्रमण, शिक्षा का व्यवसायिकरण, सूचना प्रौद्योगिकी का बाज़ारीकरण और आयातीत विचार-विमर्श हमारी भाषाई चेतना को नष्ट करने पर तुले हुए है। आज जीवन का मानदण्ड पश्चिम है जिसकी वजह से भारतीय भाषायें पिछडी रही है, संवेदना मर रही है।"[308] इस पश्चिमी लगाव किंचित् समय तक ही सापेक्ष है। क्योंकि अपनी भाषा को छोडकर किसी विदेशी भाषा के ज़रिए सामाजिक व राष्ट्रीय उन्नति पाना असंभव है।

4.12 शिल्प पक्ष

साहित्य में भावपक्ष का जितना महत्व होता है उतना शिल्प पक्ष का भी होता है। अपनी रचना को संप्रेषण की दृष्टि से अधिक सफल बनाने के उद्देश्य से साहित्यकार हमेशा कलापक्ष पर विशेष ध्यान देता है। कलापक्ष को अधिक से अधिक सामयिक एवं नवीन, मौलिक एवं विशिष्ट बनाने का प्रयास हमेशा साहित्यकार लोग करते हैं।

विवेच्य कहानियों का यानी 2001 से 2010 तक की पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों के शिल्पपक्ष का अध्ययन विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत कहानियों के कलापक्ष की कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं और प्रत्येक कहानी की अपनी कुछ विशिष्टतायें भी। प्रस्तुत कहानियों की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं पर विचार करने का प्रयास आगे किया जा सकता है।

4.12.1 कथावस्तु की शिथिलता

---

[308] अमर सिंह वधान :- भूमण्डलीकरण का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव , भाषा, मई-जून, 2010, पृ.118.

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी कहानियों में कथावस्तु का कोई ठोस रूप नहीं दिखाई देता । सामाजिक जीवन में जो शिथिलीकरण दिखाई देता है वैसे कहानी का प्लोट भी शिथिल जीवन का अथवा शिथिल समाज का साक्षात्कार करता है। *जिन-दिन-देखे वे कुसुम*[309], *वीक एंड*[310], *बनियान*[311], जैसी कहानियों की कथावस्तु शिथिल है तो *सवाल*[312], *पुष्पक विमान*[313] आदि कहानियों में शिथिलता तथा अपूर्णता दिखाई देती है।

4.12.2 पात्रों का नामकरण

पात्रों के नामकरण में अधिकतर कहानीकारों ने सर्वनामों का सहारा लिया है। यह अद्यतन कहानी की प्रवृत्ति मानी जा सकती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी कहानियों जैसे *माँ पढ़ती है*[314], *सगी-सौतेली*[315], *कुछ कहना है*[316], *श्याद तुम उसे चाहने लगे थे*[317] में 'मैं' मुख्य पात्र के रूप में आता है। अन्य सर्वनामों का जैसे 'वह', 'वे' का प्रयोग *समानांतर रेखाओं का आकर्षण*[318], *स्वांग*[319], *वैक्यूम*[320] आदि कहानियों में हुआ है। जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग भी कहानियों में दिखाई देता है जैसे 'दादी', 'बहू', 'दादाजी', 'लडकी' आदि। जाति या वर्ग विशेष अथवा व्यवसाय के आधार

309 जयंती :- हंस, सितंबर 2004
310 रश्मिकाव :- हंस, अगस्त 2002
311 उमेश अग्निहोत्री :- वागर्थ, नवंबर 2010
312 राजेन्द्र लहरिया :- नया ज्ञानोदय, नवंबर 2008
313 अलपना मिश्र :- हंस, सितंबर, 2009
314 एस.आर. हरनोट :- हंस, अप्रैल, 2002
315 ओम प्रकाश अवस्थी :- भाषा, सितंबर, 2002
316 नरेन्द्र नगदेव :- नया ज्ञानोदय, जुलाई, 2003
317 रमेश शर्मा :- अक्षरपर्व, अप्रैल, 2006
318 पंखुरी सिंहा :- हंस, मार्च, 2006
319 मनीषा कुलश्रेष्ठ :- नया ज्ञानोदय, मई, 2007
320 सरिता शर्मा :- हंस, जुलाई 2009

पर भी नामकरण हुआ है जैसे 'पंडित'(अहल्या)[321], 'छौआ भंगन, कल्लू हरिजन, राजन ठाकुर, लखन खटिक'(बदला)[322], 'कुम्हार'(मिट्टी के लोग)[323], 'तहसिलदार'(झुका हुआ गाँव)[324], 'डाक्टर साहिबा'(रफ्यूजी)[325] आदि।

4.12.3 संवाद

कहानियों के संवादों में भी कुछ नवीनताएँ मिलती हैं –

- संवाद के ज़रिए पात्रों का परिचय देने की रीति देखने को मिलती है। जैसे – सुरेश सेठकी 'बेच दो' कहानी का संवाद।

  " आप निर्मल वर्मानी है क्या?

  हाँ, मैं निर्मल वर्मानी हूँ। आपने मुझे कैसे पहचाना?

  आपको कौन नहीं जानता। इस शहर में खुलनेवाले नये टी.वी चैनल के निर्देशक है न आप

  फरमाईए

  जी, हम मॉडल है। एंकरिंग भी कर सकती है। आप कहें तो हम औडीशन केलिए आपके साथ चल सकती है"[326]

- वाक्यों को अधूरा छोडना या मौन का प्रयोग –

  कभी-कभी संवाद को अधूरा ही छोडता है। कहानी शुभ-दिन के पति-पत्नी के बीच का वार्तालाप -

---

321 सूरजपाल चौहान :- हंस, दिसंबर 2002

322 सुशीला टाकभैरे:- हंस, अक्तूबर 2008

323 एस.आर. हरनोट :- नया ज्ञानोदय, मार्च 2009

324 कैलास बनवासी :- नया ज्ञानोदय, अक्तूबर 2004

325 स्वदेश दीपक :- नया ज्ञानोदय, जनवरी 2007

326 सुरेश सेठ - बेच दो, कथादेश, जुलाई 2009, पृ.19

" आप कल भी सो गये

तुम जागती रही

और क्या

मैं भी तो.....

फिर .....

सोचा इस शुभ दिन भी तुम्हें क्या तंग करना है

किसी शुभ दिन कोई खुद तंग होना चाहे तो...."[327]

ये संवाद भावों की तीव्रता को प्रकट करने में सफल हुआ है।

- पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग -

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कहानियों में हुआ है।

"दादू मे आई आस्क वन थिंग

वन थिंग... हाँ पूछो

डू यू हैव न्यू वाइफ

शी इज योर ग्रांड माँ

नो शी इज नॉट, शी इज योर वाईफ इजन्ट इट

यस आई एम योर ग्रांड पा नेचुरली शी इज योर ग्रांड माँ

नो वे, देयर वाज आनली वन ग्रांड माँ नाउ शी इज नो मोर

दैटइज इट "[328]

---

327 बलराम :- शुभ दिन, नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2009, पृ. 71

328 गिरिराज किशोर :- रामानंद बाबू उसी दिन चले गये थे, कथादेश, जूलाई 2007, पृ.

उच्चस्तर के महानगरीय जीवन बितानेवाले शिक्षित लोग अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग ज्यादा करते हैं। इन पात्रों के संवादों में अधिकतर अंग्रेज़ी शब्दों और वाक्यों का प्रयोग देखा सकता है।

इसके साथ-साथ ग्रामीण वातावरण के अनुसार भी कहानियों में संवादो की प्रस्तुति हुई है।।

" प्रणाम चाची,

तोरा प्रणाम के हम मुंह मारी, पहले बता, तू दारू पीना छोड़ेगा कि नहीं,

का चाची... दारू तो दुनिया पीती है, हम अकेले थोड़ी न पीते हैं।"[329]

4.12.4 भाषा शैली

आलोच्य कहानियों की भाषा-शैली अपनी परंपरा से बिल्कुल भिन्न है। अधिकतर कहानियों की भाषा शहरीय एवं ग्रामीण परिवेश में निम्न एवं मध्यवर्ग में प्रयुक्त होनेवाली सामान्य बोलचाल की भाषा है। कहानीकार अपने पात्रों के स्तर को ध्यान में रखकर भावाभिव्यक्ति करने में सफल सिद्ध हुए है। इतना ही नहीं कहानीकारों ने अपने विचारों को उसी मायने में प्रस्तुत करने केलिए या पाठकों तक पहूँचाने केलिए अन्य भाषाओं का भी सहारा लिया है, जैसे हैरतअंगेज़, फ़ज़ीहत, फ़कीर, मशक्कत, फंदेबाज़ी, बहसबाजी, जात, आदमजात, खरीद-फरोखत, हकीम, हिकारत आदि कई अरबी-फारसी, उर्दू शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग। लेकिन आज की कहानियों में अंग्रेज़ी भाषा का इतना वर्चस्व हो रहा है कि आज कहानीकारों का ध्यान भी हिंदी और उसकी बोलियों के शब्दों पर कम तथा अंग्रेज़ी शब्दों पर ज्यादा पड रहा है। आज उच्च वर्गीय एवं मध्यवर्गीय पात्र भी अंग्रेज़ी शब्दों का, अंग्रेज़ी वाक्य का भरपूर प्रयोग कर रहा है। ऐसा लगता है कि अंग्रेजी शब्दों को सम्मिलित करके भाषा का प्रयोग करना वर्तमान परिवेश की एक अनिवार्यता

---

[329] प्रेम भारद्वाज :- शहर की मौत, हंस, मई 2010, पृ. 36

बन गयी है। वैश्वीकरण से प्रभावित समाज में अंग्रेज़ी का वर्चस्व सब कहीं दिखाई देता है। अतः भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है।

कहानीकारों ने स्थिति या प्रसंग के आवश्यकतानुरूप अंग्रेज़ी शब्दों का ग्रहण किया है। जैसे इंट्रोड्यूस, सर्टिफिकट्स, फ्रस्ट्रेशन, मल्टीप्लेक्स, सेक्रिफाइस, ऑथैंटिक, क्वालिफिकेशंस, साइड, फंक्शन, इमोशनली ब्लैकमैल, स्टाइलिश, इल्यूसिनेशन्स, म्यूजिक सिस्टम आदि कई शब्द अंग्रेजी भाषा का है जिसका एक दो पन्नों तक सीमित रखना असंभव है।

इतना ही नहीं अंग्रेजी वाक्यांश एवं वाक्यों का भी भरपूर प्रयोग किया है। जैसे "कीप इन टच विद मी थ्रू वायरलेस"[330], "अब डिन्नर का टाईम हो रहा है"[331], "बट व्हाई बेटा? व्हाई आर यू टांकिंग लाइक दिस?"[332]

4.12.4.1 मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग

अर्थ संप्रेषण की क्षमता बढाने केलिए आलोच्य कहानियों में मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया गया है। 'कोल्हू का बैल', दम घुटना', 'तितर-बितर बनना', 'दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होना', 'सिर पर बैठना', 'दूर की कौडी को तोडकर लाना', 'दूध की मक्खी की तरह निकालना', 'जैसा किया वैसा भुगता', 'झूठी तसल्ली देना', 'सूखे पौधे में पानी डालना', अपनी जिद पर अडे-खडे रहना', 'बाप का जूत बेटे के पैर में आना', 'कुठौर काटी और ससुर वाइगी', 'कडवा घूँट पीकर रहना', 'ईट का

---

330 अरुण मिश्रा :- फ्लडकंट्रोल, कथादेश, जूलाई 2004, पृ. 17

331 क्षमा चतुर्वेदी :- अहसास, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2006, पृ. 57

332 आरती झा :- सवाल, वागर्थ, जनवरी 2010, पृ. 80

जवाब पत्थर से देना', 'दो कौडी का होना' आदि कई प्रकार के मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग करके भाषा-सौष्ठव में वृद्धि की है।

4.12.5 रचना शैली

कहानीकार अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने केलिए भाषा का प्रयोग करता है और भाषा का विशिष्ट प्रयोग शैली है। आत्मकथात्मक शैली के साथ-साथ संवादात्मक शैली, वर्णनात्मक एवं पत्रात्मक, फ्लैश बैक प्रणाली का सहारा कहानियों में अपनायी गयी है।

आत्मकथात्मक शैली में लिखी कहानी में पात्र 'मैं' के ज़रिए लेखक कथा-प्रस्तुति करता है। *हँसो-हँसो जल्दी हँसो, सबकी खैर, देहांत* आदि आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी कहानियाँ हैं। वर्णनात्मक शैली के अंतरगत *किस्सा-ए-कोहिनूर, दौड, परछाइयाँ, अपना कमर* आदि कहानियाँ आती हैं। संवादात्मक शैली में प्रयुक्त कुछ कहानियाँ है *सवाल, अहसास, न धूप न हवा* आदि। पत्रात्मक शैली के अंदर *मौत केलिए एक अपील* और फ्लैशबैक शैली के अंदर राजेन्द्र लहरिया की *सवाल*, प्रतिभादास की *चरित्रहीन* आदि कहानियाँ आती है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव से कहानी कहने के ढंग में नयापन आया है। चेंटिंग शैली में कहानी लिखने की प्रवृत्ति इसका नमूना है, जैसे शिल्पी की 'मित्र' कहानी में चेंटिंग शैली का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्षतः आलोच्य कहानियों का शिल्प पक्ष काफी प्रबल है। युगानुरूप एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कहानियों में हुआ है। शैलीपरक विशिष्टता हिंदी कहानियों के विकास का परिचय देती है।

उपसंहार

उपनिवेशवादी युग के बाद एक नई विचारधारा या सिद्धांत का आविर्भाव संपूर्ण विश्व में हुआ जिसे नव-उपनिवेशवाद की संज्ञा दी गई। इस नव-उपनिवेशवादी प्रवृत्ति ने संपूर्ण विश्व की छवी को बदल दिया। इस विचारधारा ने एक नवीन संस्कृति का रूपधारण किया। इसने अर्थ, संपत्ति या धन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विकास की नई रूप रेखा तैयार की गयी जहाँ पूँजी को केन्द्र स्थान हासिल हुआ और पूँजीवादी वर्ग ने लोकतांत्रिक एवं सहकारी बुनियाद पर अपना वर्चस्व कायम किया। नव-उपनिवेशवादी प्रक्रिया ने निवेश एवं निजीकरण को प्रोत्साहन दिया। इससे स्रामाज्यवादी शक्तियों ने घर बैठे-बैठे पूरे विश्व पर अपना अधिकार जमाने एवं शोषण करने का एक नया माध्यम तैयार किया। इस माध्यम को बाज़ार कहते हैं। साम्राज्यवादी बाज़ार ने शोषण का नया रूप एवं विचार सामने रखा जिसे भूमंडलीकरण की संज्ञा दी गयी। साम्राज्यवादी बाज़ारों के 'ब्रान्डड' उत्पादनों ने संपूर्ण विश्व, विशेष कर विकासशील देशों एवं अविकसित राज्यों के नागरिकों, प्राकृतिक संसाधनों, अर्थव्यवस्था इत्यादिका खुलेआम शोषण करना शुरू किया।

यूँ तो भूमंडलीकरण ने संपूर्ण विश्व को छोटा गाँव जैसा बना दिया। देशी एवं विदेशी उत्पादन, लोग, संस्कृति आदि को एक दूसरे के बहुत नज़दीक जोड़ दिए हैं। तो दूसरी ओर इसके भीतर छिपी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक शोषण की मायावी शक्तियों को समाज में फैला दिया है। इन मायावी शक्तियों को हम देख नहीं सकते बल्कि धीरे-धीरे इसका अनुभव ही कर सकते हैं। भूमंडलीकरण के इन मायावी शक्तियों की शोषण प्रक्रिया इतनी बढ़ गयी है कि वर्तमान संदर्भ में भारत जैसे विकासशील राष्ट्र की आम जनता का जीना दुश्वार हो गया है। साम्राजवादी तथा

पूँजीवादी प्रतिनिधि, सरकारी व्यवस्थाओं के ज़रिए संपूर्ण देश को लूट रहे हैं। निजीकरण प्रक्रिया के ज़रिए देश का आर्थिक शोषण हो रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति के सहारे लोगों को गुमराह कर शोषण कर रहे हैं। विकास के नाम पर पूँजीवादी वर्ग अधिक संपन्न एवं ताकतवर हो रहे हैं। साम्राजवादी ताकत बाज़ार के साथ-साथ युद्ध, गृह-युद्ध, आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता इत्यादि से देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था, आपसी भाईचारा, सुरक्षा इत्यादि को संकट में डाल दिया है। विकास के नाम पर लोगों के कृषि भूमि, घर-ज़मीन, आदि को अधिग्रहण हो रहा है। इससे लोगों को विस्थापन की दर्दनाक अवस्था से गुज़रना पडता है। भूमंडलीकरण ने जहाँ लोगों के आवागमन को अधिक संभावनाएँ प्रदान की है। वहीं मुक्त बाज़ार के नाम पर देशी एवं कुटिर उद्योगों का ह्रास भी कर रहे हैं। इसके अलावा भूमंडलीकरण के इस दौर में मज़दूरों के अधिकारों एवं स्वतंत्रा पर पूँजीवादी अपना तलवार लगा रहे हैं। लोगों से कम वेतन या ज्यादा वेतन में अधिक से अधिक काम करा रहे हैं। आज आठ घंटे काम करने के बजाए चौबीस घंटे की वर्क कल्चर अब चल रहा है। भूमंडलीकरण ने नूतन तकनीकी विकास के ज़रिए संपूर्ण लोगों को तकनीकी संसाधनों में कैद रखना चाहते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण की नीतियों एवं प्रवृत्तियों का सर्वाधिक दूष्य फल साधारण व्यक्ति के जीवन पर ही है। व्यक्ति का मानसिक संघर्ष, कुण्ठा, दुःख, अकेलापन, विकृत मानसिकता, उजडा जीवन ही भूमंडलीकरण का अंतिम परिणाम है।

भूमंडलीकरण के इन दूषित प्रवृत्तियों को साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं के ज़रिए पाठकों तक पहूँचाया है। इस युग की विभीषिका एवं जीवन की विविध संघर्षरत अवस्थाओं का चित्रण समसामायिक कहानी साहित्य में प्रतिफलित होता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन, 2001 से 2010 तक के बीच की पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों मेंस्पष्ट परिलक्षित होते हैं। हंस, कथादेश, नया ज्ञानोदय, अक्षरपर्व, साहित्य अमृत, समकालीन भारतीय साहित्य, भाषा

आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों में से चुनी हुई 150 कहानियों में मानव जीवन पर हो रहे भूमंडलीकरण की दूषित प्रवृत्तियों का खुला चित्रण है।

वैश्वीकरण आज व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बना दिया है। धन लिप्सा से पारिवारिक रिश्तों को भी तोडने में उसमें कोई चूक नहीं है। वह पैसों को पकडते-पकडते रिश्तों की पकड भूल गया है। इस अवस्था से गुज़र रही आज की नन्ही पीढ़ी का भविष्य इससे भी बदत्तरहो जायेगा। *रिश्तें* (अजरा नूर), *उसका नाम लीना है* (अमित तिवारी), *यह क्या जगह है दोस्तों* (कृष्णा अग्निहोत्री) कहानियाँ उपर्युक्त विडंबनात्मक स्थिति की ओर इशारा करती हैं। भारत में भी आज 'क्रश' एवं 'ओल्ड एज होम' की संख्या बढ़ रही है।

भारतीय मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के स्वप्नों पर तिलांजली देकर आज मल्टीनैशनल कंपनियाँ अपनी डाइन की करालहस्तों से भारत की पूरी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को झंझोडकर देश को पूजीवादी साम्राज्य देशों के कर्जदार बनाया है। कृषि आधारित हमारी ग्रामीण संस्कृति में भी महानगरीय जिंदगी के प्रतीक, उपभोगवादी संस्कृति का प्रतिरूप बडी बडी 'मौल' के आगमन ने बदलाव पहूँचाया है। ब्रांडों से निर्मित एक नयी पीढ़ी आज ब्रांडों के जाल में ही फँस रही है। *सदी का महानायक उर्फ कूल कूल तेल का सेल्समेन (पंकज सुबीर), कार्न-सूप (शर्मिला बोहरा जालान), न धूप न हवा (हरियश राय)* आदि इस मॉल संस्कृति या ब्रांड कल्चरके इर्द-गिर्द घूमती कहानियाँ हैं।

आज के इस भोगवादी संस्कृति के नग्न निरंकुश सत्ता प्रतिष्ठान में स्त्री और स्त्री देह के प्रति व्यावसायिक एवं भोग-वादी नज़रिया अधिक से अधिक बढ रही है। विश्वसुन्दरी प्रतियोगिता के बहाने बाज़ार फैशन और मॉडलिंग की दुनिया की चकाचौंध को दिखाकर अपनी सौन्दर्य वर्धक वस्तुओं की बिक्री में सफलता प्राप्त की। स्त्री में जाग रही सौन्दर्य प्रतिमानों के बागडोर के ज़रिए 'सेक्स बाज़ार' का 'ऑपन मार्केट' खोल दिया। पंखूरी सिंहा की *समानांतर रेखाओं का आकर्षण*, राजेन्द्र लहरिया की *सवाल,*

सोहनशर्मा की *वो आखिरी बार सैनफ्रांसिस्को में देखी गई थी* कहानियों में मॉडलिंग की चमक-दमक भरी दुनिया का चित्रण है।

जीवन और जगत की सच्चाइयों की सही अभिव्यक्ति से समसामयिक हिंदी कहानी में विषय वैविध्य आ गया है। एक ओर महानगरीय जीवन की रफ्तार का चित्रण है तो दूसरी ओर ग्रामीण जनता की आकुलताएँ है। एक ओर उपभोगवादी संस्कृति में फँसे युवा पीढ़ी है तो दूसरी ओर खेत-खलिहान में पडी युवा पीढ़ी की दर्दभरी दास्तान का चित्रण है।

यों इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ अपने समय से साक्षात्कार करती हैं। वर्तमान जीवन की विडम्बनाओं एवं विसंगतियों का चित्रण अपनी तीव्रता एवं सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने में प्रस्तुत कहानियों के लेखकों को विशेष सफलता मिली है। ये कहानियाँ कोरी कल्पना तो नहीं है बल्कि जीवन की सच्चाईयाँ हैं जो नयी सदी की अभूतपूर्व परिवेशजन्य विकृतियों एवं विषमताओं से ग्रस्त आमजनता सामना कर रही हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(क) मौलिक कहानी

1) अखिलेश श्रीवास्तव चमन :- खुलती राहें , साहित्य अमृत, अक्तूबर 2008
2) अजय गोयल :- उपनिवेश, हंस, जुलाई 2006
3) अजय नावरिया :- एस धम्म सनंतनो , हंस, दिसंबर 2003
4) अजय नावरिया :- ढ़ाई आखर , हंस, सितंबर 2004
5) अजरा नूर :- रिश्ते , भाषा, सितंबर-अक्तूबर, 2002
6) अनिता गोपेश :- लाइफ-लाइन , नया ज्ञानोदय, अप्रैल 2007
7) अमन चक्र :- स्वाभिमान , अक्षरपर्व, फरवरी, 2008
8) अमरीक सिंह दीप :- एक कोई ओर, हंस, अगस्त 2001
9) अरुण प्रकाश ढौंडियाल :- संबन्धों के दंश , समकालीन भारतीय साहित्य,जनवरी-फरवरी, 2003
10) अरुण मिश्रा :- फ्लड कंट्रोल, कथादेश, जुलाई 2004
11 अरुण यादव :- जड-ज़मीन, हंस, सितंबर 2009
12 अल्पना मिश्र :- पुष्पक विमान, हंस, सितंबर 2009
13 अमित तिवारी :- उसका नाम लीना है , अभिव्यक्ति.हिंदी . 2007
14 अरुण प्रकाश ढौंडियाल :- संबन्धों के दंश , समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी –फरवरी 2003
15 आनंद हर्षुल :- साइनबोर्ड , कथादेश, जून 2009
16 आर.के. पालीवाल :- भगवान पायल को बचाये रखना , हंस, मार्च 2009
17 आरती झा :- सवाल , वागर्थ, जनवरी 2010
18 आलोक श्रीवास्तव :- कथादेश, मार्च 2007
19 अमित तिवारी :- उसका नाम लीना है, अभिव्यक्ती.कोम/वतन से दूर/2003
20 अभिषेक कश्यप :- सबसे अच्छी लडकी , हंस, अगस्त 2009
21 ओमप्रकाश अवस्थी :- सगी-सौतेली , भाषा, सितंबर-अक्तूबर, 2002
22 ओमप्रकाश कृत्यांश :- खाली कमरा , कथादेश, सितंबर 2010
23 उमेश अग्निहोत्री :- क्या हम दोस्त नही रह सकते , नया ज्ञानोदय , अगस्त 2006
24 उमेश अग्निहोत्री :- परीक्षा , हंस, सितबर 2006
25 उमेश अग्निहोत्री :- बनियान , वागर्थ, नवंबर 2010
26 उषा ओझा :- आखिरी निशानियों को बचा लों , हंस – जनवरी 2010
27 ऊमिला शिरीष :- कुर्की, समकालीन भारतीय साहित्य, नबंबर-दिसंबन, 2006

28 एस.आर. हरनोट :- चश्मदीद , समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2005
29 एस.आर. हरनोट :- माँ पढती है , हंस, अप्रैल 2002
30 एस.आर. हरनोट :- मिट्टी के लोग, नया ज्ञानोदय, मार्च 2009
31 कमला चमोला :- हँसो, हँसो, जल्दी हँसो , हंस, नवंबर 2003
32 कविता :- देहदंश , हंस, सितंबर 2004
33 कविता :- पत्थर, माटी, दूब , हंस, मई 2009
34 कविता :- मेरी नाम के कपड़े, हंस, फरवरी 2004
35 कृष्णा अग्निहोत्री :- यह क्या जगह है दोस्तों , भाषा, मई-जून 2010
36 कैलाश बनवासी :- झुका हुआ गाँव , नया ज्ञानोदय, अक्तूबर 2004
37 कैलाश बनवासी :- बाज़ार में रामधन , हंस अगस्त 2006
38 क्षमा चतुर्वेदी :- अहसास, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2006
39 गिरिराज किशोर :- रामानंद बाबू उसी दिन चले गये थे, कथादेश, जूलाई 2007
40 गीताश्री :- प्रार्थना के बाहर , हंस, अगस्त 2002
41 गुलजार :- बाँस, हंस, जून 2004
42 गोपाल नारायण आवटे :- शरणाथी , हंस, अप्रेरल 2007
43 चंदन पाण्डेय :- सिटी पब्लीक स्कूल, वाराणसी , नया ज्ञानोदय, मई 2007
44 चंद्रकिशोर जायसवाल :- मानबोध बाबू, हंस, जनवरी 2006
45 चंद्रशेखर दुबे :- उनका फोन , साहित्य अमृत, जनवरी 2003
46 चित्रा मुद्गल :- मामला आगे बढेगा अभी, साक्षात्कार, मार्च 2007
47 जयंती :- इस तरह से सबकुछ , हंस, फरवरी 2001
48 जयंती :- परिमला तुम हार गयी, हंस, आगस्त 2002
49 जयंती :- जिन-दिन-देखे वे कुसुम, हंस, सितंबर 2004
50 जयनंदन :- कल्याण का अन्त , नया ज्ञानोदय, मार्च 2004
51 जीवन सिंह ठाकुर :- एक कहानी की रिपोर्टिंग , वागर्थ, मार्च 2010
52 तरसेम गुजराल :- पुराना आदमी , नया ज्ञानोदय – जून 2009
53 तेजेन्द्र शर्मा :- कल फिर आना , हंस, जनवरी 2010
54 तेजेन्द्र शर्मा :- छूता फिसलता जीवन , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008
55 दिनेश पालीवाल :- कीटनाशक , हंस, फरवरी 2003
56 दिव्या माथुर :- 2050 , हंस दिसंबर 2010
57 दीपक शर्मा :- कुलजोड , हंस, नवंबर 2009
58 दुष्यंत :- प्रेम की उपकथा , कथादेश, मई 2010
59 देवेन्द्र चौबे :- सत्रह सौ चौसठ , हंस, जून 2003
60 देवेन्द्र सिंह :- भरोसा , नया ज्ञानोदय, सितंबर 2004

61 नरेन्द्र नागदेव :- गिद्ध , कथादेश, सितंबर 2010
62 नरेन्द्र नागदेव :- कुछ कहना है , नया ज्ञानोदय, जुलाई 2003
63 नरेन्द्र सैनी :- एक अधूरी डायरी की चन्द सतरें , कथादेश, जुलाई 2004
64 नवीन कुमार :- लडकियों वाला घर, कथादेश, अगस्त 2004
65 नासिरा शर्मा :- दूसरा ताजमहल , हंस, दिसंबर 2001
66 नीरजा माधव :- टेपरा, साहित्य अमृत, जून 2006
67 नीरजा माधव :- मृत्यु-पर्व , साहित्य अमृत, जून 2001
68 नीरज वर्मा :- पार्टनर, हंस, अक्तूबर 2009
69 नीलम शंकर :- अन्ततोगत्वा , साक्षात्कार, फरवरी 2007
70 निरूपमा श्रीवास्तव :- बीवी का सब्स्टिट्यूट , भाषा, जनवरी-फरवरी 2007
71 पंकज सुबीर :- सदी का महानायक उर्फ कूले कूले तेल का सेल्समेन, हंस,2010
72 पंखूरी सिंहा :- किस्सा ए कोहिनूर, कथादेश, अप्रैल 2006
73 पंखूरी सिंहा :- प्रदूषण , हंस पृ. 46
74 पंखूरी सिंहा :- समानांतर रेखाओं का आकर्षण , हंस, मार्च 2006
75 पद्मेश गुप्त :- अस्वीकृति , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008
76 पवन शर्मा :- सुरेन्द्र के पिता, हंस, दिसंबर 2002
77 पावन :- सान्ता नही चाहिए, कथादेश – जून 2008
78 पूनम सिंह :- कस्तूरी गंध, हंस, जून 2003
79 प्रतिभा दास :- चरित्रहीन, हंस, अप्रैल 2010
80 प्रभात रंजन :- मिस लिली , नया ज्ञानोदय, मई 2007
81 प्रीति श्रीवास्तव :- गॉडफादर - हंस , अप्रैल 2006
82 पुन्नी सिंह :- त्रास, समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्टोबर 2009
83 प्रेम भारद्वाज :- शहर की मौत, हंस, मई 2010
84 बलराम :- शुभ दिन, नया ज्ञानोदय, दिसंबर, 2009
85 मंगत बादल :- सबकी खैर, समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल, 2009
86 मधुसूदन साहा :- रिश्तों के दायरें , भाषा, मई-जून 2010
87 मनीष कुमार सिंह :- बाबूजी का सामान - , समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल2009
88 मनीषा कुलश्रेष्ठ :-प्रेतकामना, हंस, मई, 2007
89 मालती जोशी :- पटाक्षेप , साक्षात्कार, जूलाई 2008
90 मुकुल जोशी :- मिठास , कथादेश, जून 2007
91 रजनी दिसोदिया :- घर-परिवार , हंस, नवंबर 2009
92 रमेश शर्मा :- शायद तुम उसे चाहने लगे थे, अक्षरपर्व, अप्रैल 2006
93 रवीन्द्र स्वपनिल प्रजापति :- कोई है , भाषा, सितंबर-अकटोबर 2007

94 रश्मिकाव :- वीक एंड, हंस, अगस्त 2002
95 रश्मि गौड :- कसक , साहित्य अमृत, मार्च 2007
96 राजनारायण बोहरे :- इकलसूंगड, कथादेश, जून 2007
97 राजीव शर्मा :- शैम्पेन, वर्तमान साहित्य, फरवरी 2009
98 राजेश जैन :- निद्राखोर , जनवरी 2004,
99 राजेश झरपुरे :- वे दोनों , कथादेश, अक्तूबर 2008
100 राजीव शर्मा :- शैम्पेन, वर्तमान साहित्य, फरवरी 2009
101 राजेश जैन :- निद्राखोर , जनवरी 2004,
102 राजेन्द्र लहरिया :- सवाल , नया ज्ञानादय, नवंबर, 2008
103 रामेश्वर प्रेम :- दि बिजनेस , हंस, नवंबर 2003
104 लता शर्मा :- जिन दिन देखे वे कुसुम , हंस, सितंबर 2004
105 ललन तिवारी :- वे आ रहे हैं , अक्षरपर्व, अप्रैल 2006
106 लोकबाबू :- मुजरिम, पहल, मार्च-अप्रैल 2008
107 विकास कुमार :- जीवन का यथार्थ, अक्षरपर्व, मार्च 2007
108 विजय :- रेस का घोड़ा , अक्षरपर्व, जून 2007
109 विजय :- गिरगिट, नया ज्ञानोदय, सितंबर 2008
110 विभारानी :- उसकी गिरफ्तरी से पूर्व, साक्षात्कार, मार्च 2008
111 विभा देवसरे :- अनमेल , साहित्य अमृत, अगस्त 2007
112 विभा देवसरे :- बगीचा, साहित्य अमृत ,सितंबर 2004
113 विश्वंभर त्रिपाठी :- लावास्ता , कथादेश, नवंबर, 2008
114 शक्ति त्रिवेदी :- उपग्रह में , समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2009
115 श्याम कुमार पोकरे :- दौड, हंस, मई 2009
116 शर्मिला बोहरा जालान :- कार्न-सूप, नया ज्ञानोदय, मैय 2007
117 शर्मिला बोहरा जालान :- परिवेश , वागर्थ, सितंबर 2010
118 शिल्पी :- मित्र , नया ज्ञानोदय, मार्च 2009,
119 शिल्पी :- पापा तुम्हारे भाई, हंस, नवंबर 2004
120 शिवकुमार यादव :- कई-कई शक्लोंवाले प्रेत , नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2004
121 शिवकुमार शिव :- सुरंगे, हंस, जुलाई 2002
122 शिवनाथ शुक्ल :- रतनू कहाँ है, अक्षरपर्व, जून 2009
123 शैल अग्रवाल :- यादों के गुलमोहर , abhivyakthi.com, vatan se door,2003,
124 संगीता आनंद :- अब क्या होगा शैली , हंस , मार्च, 2004
125 संजय कुंदन :- कोई है , हंस, दिसंबर 2003
126 संजय विद्रोही :- थपेडा, अक्षर्रपर्व, फरवरी 2006,
127 संजीव चन्दन :-द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाम , कथादेश, जुलाई 2004
128 संतोष साहनी :- पक्षी सुरक्षा वन , हंस - फरवरी 2006

129 संदीप गुप्ता :- पेड पेड पानी दे -, कथादेश – जुलाई 2002
130 सरिता शर्मा :- वैक्यूम , हंस, जूलाई 2009
131 स्वदेश दीपक :- रफ्यूजी , नया ज्ञानोदय, जनवरी 2007
132 साजिद रशीद :- मौत केलिए एक अपील , हंस, फरवरी 2009
133 सावित्री देवी चौरसिया :- अपेक्षा , साक्षात्कार, अप्रैल 2003
134 सावित्री रांका :- जीवन संघर्ष, साहित्य अमृत, मई 2008
135 स्मिता :- कशमकश, हंस मार्च 2002
136 सीतेश आलोक :- दो घंटे , समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी 2010
137 सुदर्शन नारंग :- पटाक्षेप , हंस, सितंबर 2006
138 सुभाष चन्द्र कुशवाहा :- नून तेल मोबाइल, हंस, सितंबर 2006
139 सुभाष चन्द्र कुशवाहा :- जर-ज़मीन-ज़िदगी, कथादेश, जूर 2008
140 सुभाष नीरव :- आखिरी पडाव का दुख , समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर दिसंबर,2008,
141 सावित्री देवी चौरसिया :- अपेक्षा , साक्षात्कार, अप्रैल 2003
142 सावित्री रांका :- जीवन संघर्ष, साहित्य अमृत, मई 2008
143 सुरेन्द्र तिवारी :- अवरोधक , भाषा, सितंबर-अक्तूबर 2003
144 सुरेश सेठ :- बेच दो, कथादेश, जुलाई, 2009
145 सुशांत सुप्रिय :- चश्मा , भाषा, जनवरी-फरवरी 2010
146 सुशांत सुप्रिया :- प्यार , भाषा, जुलाई-अगस्त, 2003
147 सुशीला टाकभौरे :- बदला , हंस, अक्तूबर 2008
148 सुषमा जगमोहन :- कोई मेरा अपना , हंस, अक्टूबर 2004
149 सुषमा बेदी :- गुनहगार , हंस, दिसंबर 2003
150 सुषमा मुनीद्र :- लाभ-शुभ, हंस, मार्च 2004
151 सूरजपाल चौहान :- अहल्या , हंस, दिसंबर 2002
152 सुरजपाल चौहान :- जाती , साहित्य अमृत, अगस्त 2008
153 सोनी सिंह :- अपना कमरा, हंस, फरवरी 2004
154 सोफिया राजन :- श्रीमान-श्रीमति, संग्रथन , जून 2013
155 सोहनशर्मा :- वो आखिरी बार सैनफ्रांसिस्को में देखी गयी थी , हंस, जनवरी 2009
156 हरदर्शन सहगल :- झंझट , कथादेश, जुलाई 2010
157 हरियश राय :- न धूप न हवा, नया ज्ञानोदय, फरवरी 2006
158 हीरालाल नागर :- शंतनु दा की परछाई, हंस, जून 2004

(ख) सहायक ग्रंथ

1 अभय कुमार दुबे :—'भारत का भूमण्डलीकरण' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

2 उमा शुक्ला :- अस्मिता की पहचान :भारतीय नारी,लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली 2009,

3 कुमार भास्कर :- भूमण्डलीकरण और स्त्री, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2008,

4 कुमुद शर्मा :—'भूमण्डलीकरण और मीडिया', ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2003

5 डॉ. एन.एम.सण्णी, डॉ. ई.एम. अन्नासाली :- हिंदी कहानी के सौ वर्ष , जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2008,

6 डॉ. पद्मा पाटिल, डॉ. महेश 'दिवाकर' : - हिंदी पत्रकारिता: स्वरूप, आयाम और सम्भावना, अखिल भारतीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद, उ.प्र, 2006, पृ 28

7 डॉ. संजीव कुमार नरवाडे :- गिरिराज किशोर की कहानियों में समकालीन प्रवत्तियाँ, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2008

8 धर्मेद्र गुप्त :- लघु पत्रिकाएँ और साहित्यिक पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन 2000

9 प्रभा खेतान :- बाज़ार के बीच, बाज़ार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, 2004

10 मायाप्रकाश पाण्डेय :- समकलीन साहित्य, बाज़ार और मीडिया , चिंतन प्रकाशन,कानपूर 2014

11 मीरा गौतम :- अंतिम दो दशकों का हिंदी साहित्य - सं., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008.

12 राजेन्द्र मिश्र, देवी सिंह राठौर :- पत्रकारिता के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, 2003,

13 राजेन्द्र यादव :- कहानी - स्वरूप और संवेदना , वाणी प्रकाशन 2000

14 राम गोपाल सिंह —'वैश्वीकरण, मीडिया और समाज', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2011

15 स्वाति तिवारी :- अकेले होते लोग , वाणी प्रकाशन, 2006

16 सच्चिदानन्द सिंहा :- भूमण्डलीकरण की चुनौतियॉ, पृ.सं.10

17 हरदयाल :- हिंदी कहानी : परंपरा और प्रगति , वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 208.

18 हिंदी पत्रकारित: कल, आज और कल , पृ 368

(ग) आलेख

1 अजय तिवारी :- समकालीनता और साहित्य, नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2008, पृ.103.

2 अमर सिंह वधान :- भूमण्डलीकरण का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव , भाषा, मई-जून, 2010, पृ.118.

3 अमलदार नीहार - वैश्वीकरण और संस्कति का संकट, वर्तमान साहित्य, जून 2012, पृ. 26.

4 अमित मनोज :- वैश्वीकरणः साम्राज्यवादी शोषण का दूसरा नाम, पंचशील शोद्ध समीक्षा, अक्तूबर-सितंबर 2009, पृ.सं.116.

5 कृष्णदत्त पालीवाल :- भूमण्डलीकरण और साहित्य, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई -अगस्त 2011, पृ.सं. 201.

6 डॉ. नामदेव :- दलित साहित्य का अतीत, वर्तमान और भविष्य , जन विकल्प तृशूर, जनवरी 2013,

7 डॉ. पी. रवि :- जनविकल्प, अंक 2, जुलाई 2012, तृश्शूर क्ष्च्च्र : 22316191

8 प्रो.सुरेश चन्द्र :- वर्तमानकालीन प्रवासी हिन्दी कहानी में भूमण्डलीकरण प्रेरित नारी - उत्पीड़न, पंचशील शोद्धसमीक्षा, पृ.सं.34

9 रामशरण जोशी :- भोगवादी संस्कृति से साक्षात्कार , हस्तक्षेप, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 163

10 विनोद बिहारी लाल :- वैश्वीकरण अपरिमित संभावनाएँ, गहरे खतरे, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2011, पृ.सं.70

11 शम्या राज :- उजडते गाँवों की तलाश : समकालीन हिंदी कविता के विशेष संदर्भ में, पंचशील शोध समीक्षा, सं. हेतु भरद्वाज, अक्टोबर-दिसंबर 2013, पृ. 32.

12 सिन्धु ए :- 'वैश्वीकरण के संदर्भ में नए उपन्यास', जनविकल्प, मई 2011, पृ.सं. 94

13 हर्षदेव माधव :- वैश्वीकरण और संस्कृत कविता, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-आगस्त 2011, पृ. 226.

(घ) पत्रिकाएँ

1 अक्षरपर्व - देशबन्धु प्रकाशन विभाग, रायपुर, छत्तीसगढ़ 492001

2 कथादेश - सहयात्रा प्रकाशन, दिलशाद गार्डन, दिल्ली 110095

3 जन विकल्प — विकल्प, त्रिशूर, केरला 680013

4 नया ज्ञानोदय - भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003

5 पंचशील शोध समीक्षा – पंचशील प्रकाशन, जयपुर 302003
6 भाषा – केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली 110066
7 वर्तमान साहित्य - अवंतिका 1, अलीगढ़ 202001
8 वागर्थ - भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता 700017
9 संग्रथन – हिंदी विद्यापीठ, तिरुवनंतपुरम, केरल 695014
10 समकालीन भारतीय साहित्य - रवीन्द्र भवन 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110001
11 साहित्य अमृत – 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002
12 हंस - अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली 110002

(घ) **Web Site**

1 http://www.abhivyakti-hindi.org/
2 http://www.unesco.org/new/en/social-and-human-sciences/themes/international-migration/glossary/displaced-person-displacement/
3 http://en.wikipedia.org/wiki/Globalization